राष्ट्रीय शिक्षा पर एक प्रस्तावना
(A Preface on National Education)

ये दो अध्याय 1920 और 1921 में *आर्या* के दो अन्तिम अंकों में प्रकाशित हुए थे।

1

सार्वभौमिक शिक्षा की आवश्यकता एवं अमिश्रित अच्छाई आधुनिक बुद्धिमत्ता के लिए एक नियत सिद्धान्त बन गई है, एक ऐसी वस्तु जो किसी भी उदार मस्तिष्क अथवा जागृत राष्ट्रीय अन्तःकरण के लिए विवाद से परे होगी, तथा सिद्धान्त नुक्ताचीनी (cavil) से पूरी तरह से परे हो अथवा नहीं, यह किसी भी श्रेणी में मान लिया जा सकता है कि यह मानव जाति की वर्तमान तथा अनिवार्य बौद्धिक आवश्यकता एवं महत्त्वपूर्ण प्रयास का उत्तर प्रदान करने वाली है। परन्तु शिक्षा क्या है अथवा व्यवहारिक या आदर्श रूप में इसे कैसा होना चाहिए, इस सम्बन्ध में एक पर्याप्त सार्वभौमिक सहमति या आम लब्धि नहीं है। इस अनिश्चितता में माँग भी जोड़ दीजिए – हमारे अपने देश जैसे किसी देश में प्राकृतिक रूप से विद्यमान एवं कोलाहलमय, जिसमें स्वतंत्रता की भावना की जागृति भी है, जहाँ कि बहुत विशिष्ट परिस्थितियाँ हैं, जो कि केवल एशियाई तथा यूरोपीय अथवा पश्चिमी चेतना का टकराव भर नहीं हैं और बहुत भिन्न सभ्यताएँ जिन्हें उनके द्वारा बनाया गया है तथा अँग्रेजी एवं भारतीय मन व संस्कृति का बलपूर्वक कराया गया मिलन है, लेकिन राजनैतिक पराधीनता के द्वारा, जिसने शिक्षा के निर्णायक रूप से आकार दिए जाने और सर्वोच्च नियंत्रण को विदेशियों के हाथों में सौंप दिया है – एक राष्ट्रीय प्रकार की शिक्षा की माँग को जोड़ दीजिए, और इस विषय में स्पष्ट विचारों की अनुपस्थिति में, जिसमें हम प्रवेश करने वाले हैं, जैसा कि वस्तुतः हम एक बड़े और परेशान कर देने वाले भ्रम के वातावरण में प्रवेश कर चुके हैं।

यदि हम बहुत स्पष्ट रूप से नहीं यह जानते कि सामान्य अर्थ में शिक्षा वस्तुतः है क्या अथवा क्या होनी चाहिए, यह प्रतीत होता है कि हम अभी भी इस बारे में कम ही जानते हैं कि राष्ट्रीय शिक्षा से हमारा तात्पर्य क्या है। वह सबकुछ, जो लगभग सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया प्रतीत होता है, यह है कि वर्तमान विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में दी जा रही शिक्षा खराब रही है और इसके अतिरिक्त वह विराष्ट्रीयकरण करने वाली, अपमानजनक और राष्ट्रीय मानस, आत्मा और चरित्र को दरिद्र कर देने वाली है क्योंकि यह एक विदेशी हस्तक्षेप से निष्प्रभावी कर दी गई है एवं लक्ष्य, तरीकों, अर्थ एवं भावना से विदेशी है। परन्तु यह पूर्णतः नकारात्मक सहमति हमें बहुत आगे नहीं ले जाती है : यह हमें यह नहीं बताती है कि हम सिद्धान्त अथवा व्यवहार में क्या कामना करते हैं या किसे इसके स्थान पर रखना चाहते हैं। एक उपाधि (epithet) में काफी सद्गुण हो सकता है परन्तु एक विद्यालय या महाविद्यालय या यहाँ तक कि शिक्षा बोर्ड या परिषद् में "राष्ट्रीय" शब्द लगा देना, उसे एक स्वदेशी संस्था के हाथों में दे देना, जिसमें कि अधिकांशतः उसी व्यवस्था द्वारा प्रशिक्षित लोग हैं जिनकी हम निन्दा कर रहे

हैं, जिससे कि वे दोषित व्यवस्था को कुछ भिन्नताओं, जोड़, घटाव, विस्तार एवं पाठ्यचर्या के बदलावों के साथ पुन:उत्पादित कर सकें, एक तकनीकी पक्ष से जोड़ सकें और हम यह सोचें कि हमने समस्या का समाधान कर लिया है, वस्तुतः कुछ भी नहीं बदलता है। इस प्रकार की किसी तिकड़म से सन्तुष्ट होना हमारे बौद्धिक गुरुत्वाकर्षण के केन्द्र के चारों ओर कलाबाजी का प्रदर्शन करना है, उसी जगह पहुँच जाना जहाँ हम पहले से थे और यह सोचना कि हम किसी अन्य ही देश में पहुँच गए हैं – निःसन्देह यह एक काफी निराशाजनक कार्यवाही है। वो संस्थान जो नया नाम रखते हैं, वे दूसरों से बेहतर शिक्षा दे भी सकते हैं या नहीं भी, लेकिन वे किन अर्थों में अधिक राष्ट्रीय हैं, यह पूरी तरह से अस्पष्ट है, यहाँ तक कि उनके लिए भी जो सर्वाधिक स्वैच्छिक सहानुभूतिपूर्ण आलोचनात्मक बुद्धिमत्ता रखते हैं।

समस्या वस्तुतः चुनौती को पार करने की है और यह पता लगाना आसान नहीं है कि व्यक्ति को विचार अथवा अभ्यास के किस बिन्दु से शुरुआत करनी चाहिए, यह किस सिद्धान्त के आधार पर निर्मित होना चाहिए अथवा किस तर्ज पर नए भवन के निर्माण की रूपरेखा तैयार की जानी चाहिए। परिस्थितियाँ जटिल हैं और वह वस्तु भी जिसे पूरी तरह से एक नए तरीके से बनाया जाना है। हम अतीत के किसी ऐसे सिद्धान्त, पद्धति और व्यवस्था को पुनर्जीवित किए जाने मात्र से सन्तुष्ट नहीं हो सकते हैं जो एक समय में भारत में प्रचलन में रहा होगी, चाहे वह कितनी भी महान थी अथवा हमारे अतीत की सभ्यता एवं संस्कृति के अनुरूप रही हो। वह प्रत्यावर्तन एक अनुर्वर और असम्भव प्रयास होगा जो वर्तमान की आवश्यक माँगों तथा हमारे भविष्य की कहीं बड़ी जरूरतों के लिए पूर्णतः अपर्याप्त होगा। दूसरी ओर अँग्रेजी, जर्मन अथवा अमरीकन विद्यालय और विश्वविद्यालय को अधिग्रहित करने के लिए अथवा उनमें भारतीय रंगत की चमक से कुछ बदलाव लाना आकर्षक रूप से एक सुगम कार्यवाही है और यह एक ऐसा तरीका है जिसमें सोचने व नए प्रयोग की आवश्यकता नहीं है; लेकिन ऐसी स्थिति में शिक्षा के राष्ट्रीयकरण के लिए किसी तेज शोर-गुल की आवश्यकता नहीं है, केवल शिक्षण के माध्यम की, पाठ्यचर्या की रूपरेखा एवं गठन की और कुछ हद तक विषयों में सन्तुलन के सन्दर्भ में नियंत्रण में बदलाव की आवश्यकता है। मैं यह मान लेता हूँ कि यह उससे कुछ अधिक गम्भीर, बृहत् और अन्वेषी है जो हमारे मन में है और वह, जिसे आकार देने में चाहे जो भी कठिनाई हो, यह भारतीय मानस और आवश्यकता तथा मिज़ाज एवं संस्कृति के लिए एक उपयुक्त है, जिसकी तलाश में हम हैं, बेशक कुछ ऐसा नहीं जो मात्र अतीत के प्रति वफादार हो, बल्कि वह जो भारत की आत्मा, उसके भविष्य की आवश्यकता, उसके आने वाले स्व-निर्माण की महानता, उसकी चिरकालिक भावना का विकास करे। यह वह चीज है जिसे हमें अपने मस्तिष्क में स्पष्ट करना होगा और इसके लिए हमें गम्भीर क्रियान्वयन से पहले मूल सिद्धान्तों तक नीचे पहुँचकर उन्हें दृढ़ बनाना होगा। अन्यथा एक झूठी लेकिन दिखावटी चीख-पुकार से ज्यादा आसान और

कुछ नहीं है या अपुष्ट प्रारम्भ बिन्दु से चलकर सही रास्ते से दूर किसी स्पर्श रेखा पर चले जाना हमें किसी लक्ष्य तक नहीं बल्कि केवल खालीपन और असफलता तक ले जाएगा।

लेकिन पहले हम मार्ग से हट जाएँ या कम-से-कम इसे सही स्थान पर रखें और अक्षम करने वाली प्राथमिक आपत्ति पर प्रकाश डालें कि एक राष्ट्रीय शिक्षा के विचार का कोई अर्थ नहीं है और न ही हो सकता है या इन सन्दर्भ में कुछ ऐसा है जो समस्याजनक है और एक ऐसे क्षेत्र में जहाँ राष्ट्रभक्ति का एक अच्छी नागरिकता पर प्रशिक्षण देने के अतिरिक्त कोई भी वैध स्थान नहीं है, असत्य और संकीर्ण राष्ट्रभक्ति के दखल की यह समस्त धारणा अवांछित एवं अलाभकारी है। और उस एक उद्देश्य के लिए किसी विशेष प्रकार या शैली की शिक्षा की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि चाहे पूर्व में हो अथवा पश्चिम में, इंग्लैण्ड में हो या जर्मनी में या जापान में हो या भारत में, अच्छी नागरिकता का प्रशिक्षण सभी के आधारभूत तत्त्वों में समान ही होगा। मानव जाति एवं इसकी आवश्यकताएँ सभी जगह समान हैं तथा सत्य एवं ज्ञान एक हैं और इनका कोई देश नहीं है; शिक्षा भी एक सार्वभौमिक वस्तु होनी चाहिए जिसे किसी राष्ट्र अथवा सीमा से नहीं बँधा होना चाहिए। उदाहरण के लिए, विज्ञान में राष्ट्रीय शिक्षा का क्या अर्थ हो सकता है, और क्या यह इस बात को महत्त्व देता है कि हम आधुनिक सत्य एवं विज्ञान की आधुनिक विधि को इसलिए नकारने वाले हैं क्योंकि वे हम तक यूरोप से आए हैं और प्राचीन भारत के त्रुटिपूर्ण वैज्ञानिक ज्ञान तक वापस जाते हैं, गैलीलियो और न्यूटन (Galileo and Newton) को निष्कासित करते हैं और उन सबको जो उनके बाद आए तथा सिर्फ वही पढ़ाने वाले हैं जो भास्कर, आर्यभट्ट और वराहमिहिर (Bhaskara, Aryabhatta and Varahamihira) को ज्ञात था? अथवा संस्कृत या जीवन्त देशज भाषाओं का शिक्षण किस प्रकार स्वरूप एवं विधियों में लैटिन अथवा यूरोप की आधुनिक जीवन्त भाषाओं से भिन्न है? फिर क्या हम नादिया (Nadia) के टोल के तरीकों या उस व्यवस्था को वापस लाने वाले हैं, यदि हम यह पता लगा सकते हैं कि यह था क्या, जो प्राचीन तक्षशिला अथवा नालन्दा में अभ्यास में लाया जाता था? अधिक-से-अधिक जो माँग की जा सकती है, वह है हमारे देश के अतीत के अध्ययन के लिए अधिक व्यापक स्थान, एक माध्यम के रूप में अँग्रेजी को देशी जुबानों द्वारा बदल दिया जाना और अँग्रेजी को द्वितीय भाषा का स्थान दिए जाने का बहिष्कार, – लेकिन इन बदलावों की सुझावात्मकता को भी चुनौती दिया जाना सम्भव है। आखिरकार हम बीसवीं सदी में रहते हैं और चन्द्रगुप्त या अकबर के भारत को पुनर्जीवित नहीं कर सकते; हमें अवश्य ही सत्य एवं ज्ञान की यात्रा के साथ चलना चाहिए, वास्तविक परिस्थितियों में अस्तित्व के लिए स्वयं को दुरुस्त रखना चाहिए, और इसके लिए हमारी शिक्षा को अपने स्वरूप तथा सार में अवश्य ही अद्यतन एवं जीवन एवं भावना में आधुनिक होना चाहिए।

ये सारी आपत्तियाँ तभी प्रासंगिक हैं यदि उन्हें राष्ट्रीय शिक्षा के विचार के उपहास के विरुद्ध निर्दिष्ट किया जाए जो इसे अतीत के प्रकारों के एक विघ्नकारी परावर्तन का माध्यम बना देगा, जो एक समय में हमारी संस्कृति का एक जीवन्त ढाँचा थे लेकिन अब मर चुकी या मर रही चीजें हैं; लेकिन यह न ही विचार है और न उद्यम। राष्ट्रीय शिक्षा के लिए माँग की जीवित भावना को ज्योतिष शास्त्र और भास्कर के गणित पर अथवा स्वदेशी की जीवित भावना के बजाय नालन्दा की व्यवस्थाओं के प्रकार पर, रेलवे और मोटर चालित वाहनों से प्राचीन रथ एवं बैलगाड़ी की ओर लौटना वांछित नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस बारे में बहुत सारा पतनशील भावुकतावाद (retrogressive sentimentalism) है और सामान्य समझ व तर्क पर कुछ असामान्य हिंसा रही है तथा परेशान कर देने वाले असामान्य लोग हैं जिनमें असली मुद्दे के प्रति पूर्वाग्रह है, लेकिन कल्पना के ये महत्त्वहीन दौर इस मामले को एक झूठा रंग दे देते हैं। यह भावना है, जीवित एवं महत्त्वपूर्ण मुद्दे जिनके साथ हमें काम करना है, और यह प्रश्न आधुनिकतावाद (modernism) एवं प्राचीन काल के बीच का नहीं है, बल्कि एक आयातित सभ्यता और भारतीय मन एवं प्रकृति की बृहत्तर सम्भावनाओं के बीच का है, वर्तमान एवं अतीत के बीच का नहीं है, बल्कि वर्तमान एवं भविष्य के बीच का है। यह पाँचवीं सदी में वापसी नहीं है, बल्कि आने वाली सदियों के लिए एक शुरुआत है, यह पीछे जाना नहीं है बल्कि वर्तमान की दिखावटी असत्यता से अलग होकर आगे भारत की अपनी उन बृहत्तर स्वाभाविक सम्भावनाओं की ओर बढ़ना है जिसकी माँग उसकी आत्मा, उसकी शक्ति द्वारा की जा रही है।

राष्ट्रीय शिक्षा के विरुद्ध दिया जाने वाला तर्क उन निर्जीव अकादमिक अवधारणाओं से ऊपर पहले स्थान पर पहुँच जाता है जिनमें कि विषय, इस या उस तरह की सूचना को हासिल करना ही सम्पूर्ण अथवा केन्द्रीय वस्तु है। लेकिन विभिन्न प्रकार की सूचनाओं की प्राप्ति, शिक्षा के माध्यमों एवं इसकी अनिवार्यताओं में से केवल एक है और यह सबसे प्रमुख नहीं है : इसका केन्द्रीय लक्ष्य मानव के मन तथा आत्मा की शक्तियों को बढ़ाना है, यह संरचना है, या मैं इसे ऐसे देखना चाहूँगा, ज्ञान और इच्छाशक्ति का आहवान करना और ज्ञान, चरित्र, संस्कृति, के उपयोग की शक्ति – अगर और नहीं तो कम-से-कम यह तो। और यह विशिष्टता बहुत बड़ा अन्तर पैदा करती है। यह पर्याप्त सत्य है कि यदि हम केवल जिसकी माँग कर रहे हैं, वह है विज्ञान द्वारा हमारे निष्पादन के लिए प्रस्तुत सूचनाओं को प्राप्त करना, यह पश्चिम के विज्ञान के अधिग्रहण के लिए पर्याप्त होगा चाहे वह उसका पूरा का पूरा बिना पचाया हुआ स्वरूप हो अथवा सावधानीपूर्वक पैक किए हुए खण्ड। परन्तु प्रमुख प्रश्न केवल यह नहीं है कि हम कौन-सा विज्ञान पढ़ें, लेकिन यह कि हमें अपने विज्ञान के साथ क्या करना चाहिए और यह भी कि कैसे, वैज्ञानिक मानस की प्राप्ति की जाए और वैज्ञानिक खोज की आदत को पुनः हासिल किया जाए – मैं भारतीय मानसिकता की उस सम्भावना को अलग रख रहा हूँ जो स्वयं की प्रकृति में मुक्त

रूप से कार्य करती है व नए तरीके खोजती है या यहाँ तक कि भौतिक विज्ञान को एक नया स्वरूप देती है – हमें इसे मानव मन की अन्य शक्तियों और वैज्ञानिक ज्ञान से जोड़ना चाहिए, अन्य ज्ञान से जो दूसरे से अधिक अभिन्न है तथा हमारी बुद्धिमत्ता एवं प्रकृति को कम प्रकाश प्रदान करने वाले व कम शक्ति प्रदान करने वाले भाग नहीं हैं। और भारतीय मानस का एक विशिष्ट साँचा, इसकी मनोवैज्ञानिक परम्परा, इसकी पैतृक क्षमता, रुझान, ज्ञान, एक सर्वोच्च महत्त्व वाले सांस्कृतिक तत्त्वों को लाते हैं। एक भाषा, संस्कृत अथवा कोई अन्य, उसी तरीके से अर्जित की जानी चाहिए जो सर्वाधिक प्राकृतिक, कार्यकुशल और मस्तिष्क के लिए प्रेरक हो और हमें वहाँ शिक्षण के किसी अतीत अथवा वर्तमान तरीके के साथ चिपके रहने की आवश्यकता नहीं है : लेकिन मूल प्रश्न यह है कि हम संस्कृत और देशज भाषाओं को कैसे सीखेंगे व उपयोग में लाएँगे जिससे कि हम अपनी संस्कृति के केन्द्र एवं गूढ़ अर्थ तक पहुँच पाएँ और उनके बीच कैसे सुस्पष्ट निरन्तरता बनाएँ जो अब तक हमारे अतीत की जीवन्त शक्ति है और फिर भी हमारे भविष्य की असृजित शक्ति है, और हम अँग्रेजी या किसी अन्य विदेशी भाषा को कैसे सीख एवं उपयोग कर सकते हैं जिससे कि हम उसकी मदद से अन्य देशों के जीवन, विचारों एवं संस्कृति को जान सकें तथा अपने चारों ओर की दुनिया से हमारे सही सम्बन्धों को स्थापित कर सकें। यह एक सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा का लक्ष्य एवं सिद्धान्त है, निश्चय ही आधुनिक सत्य एवं ज्ञान को अनदेखा करने के लिए नहीं, बल्कि हमारी अपनी बुनियाद को हमारे स्वयं के अस्तित्व, हमारे अपने मस्तिष्क, हमारी अपनी आत्मा पर ले जाने के लिए।

दूसरा आधार जो खुले तौर पर अथवा चातुर्यपूर्ण तरीके से प्रतिरोधी तर्क द्वारा लिया जाता है कि आधुनिक, अर्थात, यूरोपीय सभ्यता वह चीज है जो हमें हासिल करनी है और हमें स्वयं को इसके लिए योग्य बनाना है, जिससे कि हम जीवन जी सकें और समृद्धि प्राप्त कर सकें और हमारी शिक्षा को हमारे लिए यह अवश्य ही करना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा का विचार, इस पूर्वधारणा की पर्याप्तता को चुनौती देता है। यूरोप ने अपनी प्राचीन संस्कृति को अधिकांशतः पूर्व से, मिस्र से, चैल्डिया (Chaldea), फिनिशिया (Phoenicia), भारत से हासिल की गई बुनियाद पर बनाया, परन्तु इसे देशी भावना तथा ग्रीस और रोम के मिजाज, मस्तिष्क एवं सामाजिक सहज योग्यता से एक अन्य दिशा और अन्य जीवन-विचार की ओर मोड़ दिया, इसे खोकर पुनः प्राप्त किया, अरब के हिस्से में जिसमें पूर्व के निकट से तथा भारत से और अधिकांशतः पुनर्जागरण से कुछ नया लिया गया था, लेकिन तब भी इसे ट्यूटॉनिक (Teutonic), और लैटिन (Latin), सेल्टिक (Celtic) तथा स्लाव (Slav) जातियों की स्थानीय भावना एवं मिजाज, मन और सामाजिक सहज योग्यता के अनुरूप एक नई दिशा दी। इस प्रकार रची गई सभ्यता जिसने स्वयं को दीर्घकाल से मानवता के मन के अन्तिम और अनिवार्य वचन के रूप में उपस्थित किया है, परन्तु एशिया के देश इसे मानने के लिए बाध्य नहीं हैं, और यूरोप के पास प्रस्तुत

करने के लिए जो भी नया ज्ञान अथवा न्यायसंगत विचार हैं उन्हें अधिकार में लेकर, उसे अपने ज्ञान एवं संस्कृति में, अपने स्थानीय मिजाज व भावना, मन और सामाजिक सहज योग्यता से आत्मसात कर, वे इससे बेहतर करेंगे, तथा इसके द्वारा भविष्य की सभ्यता का निर्माण करेंगे। पश्चिम की वैज्ञानिक, तार्किक, औद्योगिक, छद्म लोकतांत्रिक सभ्यता अब विघटन की प्रक्रिया में है तथा इस समय हमारे लिए उस ध्वस्त होती बुनियाद पर बिना सोचे निर्माण करना एक विक्षिप्त मूर्खता होगी। जब पश्चिम के सर्वाधिक विकसित मस्तिष्क पश्चिम के अपने इस रक्तिम अतिकाल (red evening) को एक नई और अधिक आध्यात्मिक सभ्यता की आशा में एशिया की सहज योग्यता की ओर मोड़ रहे हैं, यह अटपटा होगा यदि हम अपने स्व एवं अपनी सम्भावनाओं का त्याग करने से बेहतर कुछ और न सोच सकें तथा अपने भरोसे को यूरोप के क्षीण हो रहे और मृतप्राय अतीत पर लगा दें।

और, अन्त में, विरोध का आधार अपने-आप में उस विचार में अन्तर्निहित है कि व्यक्ति का मन सर्वत्र समान है तथा सर्वत्र एक ही उपकरण से गुजारा जा सकता है और व्यवस्थित करने के लिए समान रूप से निर्मित है। यह विचार शक्ति का एक पुराना और अशक्त अन्धविश्वास है जिसे अब छोड़ देना चाहिए। मानवता के वैश्विक मन तथा आत्मा के भीतर व्यक्ति का मन और आत्मा है, जिसमें इसकी असीमित विविधता, इसकी समानता तथा इसकी विशिष्टता है, और इन दो के बीच एक मध्यवर्ती शक्ति है, राष्ट्र का मन है, लोगों की आत्मा है। और इन तीनों में से शिक्षा को अवश्य जवाब देना चाहिए यदि इसे मशीन से बने कपड़े की तरह न होकर एक सच्चा स्वरूप अपनाना है अथवा मस्तिष्क की शक्तियों और मानव की भावना की जीवन्त पुनर्रचना करनी है।

2

राष्ट्रीय शिक्षा के मूल विचार के सम्बन्ध में की गई इन प्राथमिक आपत्तियों और, संयोग से, उन गलत धारणाओं जिनका वे एक बार विरोध कर मार्ग से हटा देते हैं, के बाद भी हमें अधिक सकारात्मक रूप से यह प्रतिपादित करना होगा कि हमारे लिए इस विचार का क्या अर्थ है, वह सिद्धान्त तथा स्वरूप क्या है जो भारत में राष्ट्रीय शिक्षा द्वारा अवश्य अपनाया जाना चाहिए, वह कौन-सी वस्तु है जिसे प्राप्त किया जाना है और इस प्रयास को कौन-सी विधि एवं घुमाव दिया जाना है। यहीं पर वास्तविक कठिनाई प्रारम्भ होती है क्योंकि हमने एक लम्बे समय तक, न केवल शिक्षा में अपितु लगभग सभी चीजों में, हमारे समस्त सांस्कृतिक जीवन में, राष्ट्रीय भावना एवं विचार की पकड़ खो दी है और अब तक स्पष्ट, मजबूत तथा गहरी सोच के लिए कोई भी प्रयास नहीं किया गया है अथवा यह देखने के लिए कि कौन-सी चीज हमें इससे उबरने में सहायक होगी और इसलिए मौलिक और सहायक सामग्री पर न कोई स्पष्ट समझौता या यहाँ तक कि स्पष्ट मतभिन्नता भी नहीं है। अधिक-से-अधिक हम एक दृढ़ भाव के साथ और एक सामान्य परन्तु इस भाव के साथ तदनुरूप आकारहीन विचार तथा एक उत्सुकता से सन्तुष्ट रहे हैं और इसे उस रूप में दिया है जो किसी भी बेतरतीब प्रयोग के साथ हमारे बौद्धिक सम्बन्धों, आदतों अथवा सनक के साथ स्वीकार्य रहा है। परिणाम स्पर्शगोचर अथवा चिरस्थाई सफलता नहीं रहा है, परन्तु उल्टे ही यह भ्रम की अधिकता और असफलता रहा है। पहली चीज जो आवश्यक है वह यह है कि हम अपने मस्तिष्क में यह स्पष्ट करें कि कौन-सी राष्ट्रीय भावना, मिजाज, विचार, आवश्यकता हमसे शिक्षा के माध्यम से यह माँग करती है तथा इसे समस्या के सभी तत्त्वों पर इसकी सही सद्भावना के साथ लागू करती है। यह किए जाने के बाद ही हम वास्तव में कुछ आत्मविश्वास और उपयोगिता की सम्भावना व सफलता के साथ यह आशा कर सकते हैं कि भविष्य के भारतीय पुरुषत्व के एक वास्तविक, जीवित तथा सृजनात्मक पालन-पोषण द्वारा वर्तमान झूठी, खोखली और यांत्रिक शिक्षा को किसी बेकार तथा निरर्थक अव्यवस्था अथवा एक नई यांत्रिक असत्यता से कुछ बेहतर चीज से बदल सकते हैं।

परन्तु सबसे पहले यह आवश्यक है कि हम एक सच्ची शिक्षा, इसके अनिवार्य अर्थ, इसके आधारभूत लक्ष्य और उपयोगिता के बारे में जो कुछ भी समझते हैं उसकी सभी अस्पष्टताओं से स्वयं को अलग करें। जिससे कि हम अपनी शुरुआतों के बारे में निश्चिन्त हो सकें और इस शब्द के उस विशेषण के सम्पूर्ण अभिप्राय, जिसे हम इससे जोड़ना चाहते हैं, के लिए न्यायपूर्ण स्थान निर्धारित करने के लिए सुरक्षित रूप से आगे बढ़ सकें। राष्ट्रीय शिक्षा क्या है अथवा क्या

हो सकती है, यह सुनिश्चित करने से पहले मुझे यह तय करना होगा शिक्षा अपने-आप में क्या है अथवा कैसी होनी चाहिए। आइए, तब अपने प्रारम्भिक वक्तव्य के साथ प्रारम्भ करते हैं जिसमें मैं समझता हूँ कि तीन चीजें हैं जिनपर एक वास्तविक और जीवन्त शिक्षा में ध्यान दिया जाना चाहिए, मनुष्य, व्यक्ति अपनी समानता तथा अपनी विशिष्टता में, राष्ट्र अथवा लोग एवं वैश्विक मानवता। यह इस बात का अनुसरण करता है कि केवल यह एक वास्तविक तथा जीवन्त शिक्षा होगी जो पूर्ण अनुकूल परिस्थितियों को सामने लाने में सहायता करती है, मानव जीवन के पूर्ण उद्देश्य और कार्यक्षेत्र के लिए तैयार करती है जो सबकुछ एक व्यक्ति में होता है, तथा जो उसी समय में उसे लोगों के जीवन, मन और आत्मा के साथ उसके सही सम्बन्ध में प्रवेश करने में सहायता करता है, जहाँ उसका अस्तित्व होता है तथा मानवता के उस महान सम्पूर्ण जीवन, मन और आत्मा जिसकी वह स्वयं एक इकाई है और उसके लोग अथवा राष्ट्र एक जीवन्त, पृथक एवं फिर भी अभिन्न अंग हैं। इस विशाल और सम्पूर्ण सिद्धान्त के प्रकाश में पूरे प्रश्न पर विचार करने से हम सर्वोत्तम रूप से एक स्पष्ट विचार पर पहुँच सकते हैं कि हम अपनी शिक्षा को कैसा बनाएँगे और हमें राष्ट्रीय शिक्षा के माध्यम से क्या प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। वर्तमान में भारत में जिसकी सबसे अधिक आवश्यकता है वह है विचारों की यह विशालता और बुनियाद, जिसके जीवन उद्देश्य की सम्पूर्ण ऊर्जा उसके प्रारब्ध के इस महत्त्वपूर्ण मोड़ पर होनी चाहिए जो उसकी महान आवश्यकता की ओर निर्देशित हो, उसके वास्तविक आत्म को प्राप्त कर व्यक्ति तथा लोगों में उसका पुनर्निर्माण करना और, इस प्रकार इसे पुनः प्राप्त करने के लिए, उसकी आन्तरिक महानता, उसके देय एवं वास्तविक अंश तथा मानव जाति के जीवन में स्थान को पाया जा सकेगा।

हालाँकि मानव और उसके जीवन, राष्ट्र और इसके जीवन तथा मानवता व मानव प्रजाति के जीवन के सन्दर्भ में बिलकुल भिन्न संकल्पनाएँ सम्भव हैं, और इस भिन्नता के अनुसार शिक्षा में हमारे विचार एवं प्रयासों का पर्याप्त रूप से भिन्न होना सम्भव है। भारत की सदा ही इन चीजों के लिए अपनी विशिष्ट अवधारणा तथा दृष्टि रही है और हमें यह अवश्य देखना चाहिए क्या यह वास्तव में वैसी नहीं है, जैसी कि इसकी होने की सम्भावना है, और जो हमारी शिक्षा की बिलकुल बुनियाद में होना चाहिए अथवा होगी और वह एक चीज जो इसे इसका एक सच्चा राष्ट्रीय चरित्र प्रदान करेगी। मानव को भारत के विचारों में केवल भौतिक प्रकृति द्वारा विकसित ऐसे जीवित शरीर के रूप में नहीं देखा गया है जिसने कुछ प्राणदायी प्रवृत्तियों, एक दम्भ, एक मन और एक तर्क क्रमिक रूप से विकसित कर लिया है, एक पशु जो होमो जाति (genus homo) का है तथा हमारे मामले में *होमो इंडिकस* (homo indicus) उपजाति का, जिसका पूरा जीवन और शिक्षा एक प्रशिक्षित मन तथा तर्क की सरकार के अन्तर्गत अनिवार्य रूप से इन प्रवृत्तियों की सन्तुष्टि की ओर मुड़ी होनी चाहिए और इसे व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय दम्भ के

सर्वश्रेष्ठ हित के लिए होना चाहिए। यह न उसके (भारत के) मन की बारी रही है कि वह मानव को एक तार्किक पशु के रूप में श्रेष्ठ माने, अथवा यह कहें कि, परिचित परिभाषा को विस्तार देते हुए, एक विचार, एहसास तथा स्वैच्छिक प्राकृतिक अस्तित्व, भौतिक प्रकृति का एक मानस पुत्र, और मानसिक क्षमताओं की संस्कृति के रूप में उसकी शिक्षा, अथवा उसे एक राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक प्राणी के रूप में परिभाषित करना और उसकी शिक्षा को एक ऐसे प्रशिक्षण के रूप में परिभाषित करना होना जो उसे समाज और राज्य के एक सक्षम, उर्वर तथा सुअनुशासित सदस्य के रूप में सुयोग्य बनाएगी। निःसन्देह यह सब मानव जीवन के पहलू हैं और उसने (भारत ने) इन्हें अपनी व्यापक दृष्टि में यथोचित प्रमुखता दी है, परन्तु वे बाह्य वस्तुएँ हैं, उसके मन, जीवन तथा कार्य के यंत्र विन्यास के हिस्से, न कि सम्पूर्ण अथवा वास्तविक मानव।

भारत ने सदा ही व्यक्ति में एक आत्मा, दिव्यता (Divinity) का एक अंश देखा है जो मन और शरीर में सम्बलित (enwrapped) होता है, सार्वभौमिक स्व तथा आत्मा की प्रकृति में एक सचेतन प्रकटीकरण। यह सदैव ही विलक्षण रही है और उसमें एक मानसिक, एक बौद्धिक, एक नीतिपरक, ऊर्जावान तथा व्यवहारिक, एक सौन्दर्यपूर्ण और सुखभागी (hedonistic), एक प्राणदायी तथा भौतिक जीव को तैयार किया है, परन्तु इन सभी को एक आत्मा की शक्ति के रूप में देखा गया है जो उनके माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति करती है और उनकी अभिवृद्धि के साथ बढ़ती जाती है, और तब भी वे समस्त आत्मा नहीं हैं, क्योंकि इसके आरोहण के शिखर पर यह इन सभी से कहीं अधिक व्यापक स्वरूप में आती है, एक आध्यात्मिक जीव के रूप में, तथा इस रूप में यह व्यक्ति की आत्मा की सर्वोच्च अभिव्यक्ति और उसके सर्वोच्च दैवीय पुरुषत्व को, उसके परमार्थ और सर्वोच्च पुरुषार्थ को प्राप्त करती है। और समान रूप से भारत को राष्ट्र अथवा लोगों द्वारा एक संगठित राज्य अथवा एक सशस्त्र व सक्षम समुदाय नहीं समझा है जो जीवन के संघर्ष के लिए अच्छी तरह तैयार हो और सर्वस्व को राष्ट्र के गौरव की सेवा में लगा रहा हो, – यह केवल लौह कवच का छद्म रूप है जो राष्ट्रीय पुरुष को ढँक लेता और उलझा देता है, – परन्तु एक विशाल साम्प्रदायिक आत्मा तथा जीवन जो सम्पूर्ण में प्रकट हुआ है और अपनी एक प्रकृति और उस प्रकृति के एक सिद्धान्त को प्रदर्शित किया है, जो एक स्वभाव तथा स्वधर्म है, व इसे इसके बौद्धिक, सौन्दर्यपूर्ण, नीतिपरक, ऊर्जावान, सामाजिक और राजनैतिक स्वरूपों एवं संस्कृति में प्रस्तुत किया है। और उसी समय में मानवता की हमारी सांस्कृतिक अवधारणा मानव जाति में वैश्विक प्रकटीकरण की उसकी (भारत की) प्राचीन दृष्टि के अनुरूप होनी चाहिए, जिसका क्रमिक विकास जीवन और मन के माध्यम से हो परन्तु एक सर्वोच्च आध्यात्मिक लक्ष्य के साथ, – यह अनिवार्य रूप से आत्मा की कल्पना, संघर्ष से होकर आगे बढ़ती मानवता का अन्तःकरण तथा एकात्मकता की ओर सामंजस्य हो, जो इसके अनुभवों

को बढ़ाए और अपने बहुत सारे लोगों की भिन्नतापूर्ण संस्कृतियों तथा जीवन उद्देश्यों के माध्यम से अपेक्षित विविधता को बनाए रखे, जहाँ व्यक्ति की शक्तियों के विकास के माध्यम से और एक दैवीय जीव व जीवन की ओर उसकी प्रगति से सम्पूर्णता की तलाश हो, परन्तु जाति के जीवन में यह समान पूर्णता के पश्चात अधिक धीरे-धीरे महसूस करना होगा। यह विवादित हो सकता है कि क्या यह मानव का अथवा एक राष्ट्रीय प्राणी का एक सत्य विवरण है, परन्तु यदि यह एक बार एक सच्चे विवरण के रूप में स्वीकार कर लिया गया, तब यह स्पष्ट होना चाहिए कि केवल वही सच्ची शिक्षा होगी जो व्यक्ति और राष्ट्र के मन व शरीर में आत्मा के वास्तविक कार्य करने के लिए एक उपकरण होगी। यह वो सिद्धान्त है जिसपर हमें अनिवार्य रूप से निर्माण करना चाहिए, जो केन्द्रीय उद्देश्य तथा मार्गदर्शक आदर्श है। यह अवश्य ही एक ऐसी शिक्षा होनी चाहिए जो व्यक्ति के लिए आत्मा के विकास और इसकी शक्तियों व सम्भावनाओं को एक केन्द्रीय वस्तु बनाए, जिससे कि राष्ट्र द्वारा राष्ट्र की आत्मा तथा इसके धर्म के संरक्षण, सुदृढ़ीकरण व संवर्द्धन को अपनी दृष्टि में प्रथम रखेगा एवं दोनों को जीवन की शक्तियों और मानवता के उठते हुए मन व आत्मा में पोषित करेगा। और कुछ ही समय में मानव की सर्वोच्च वस्तु, उसके आध्यात्मिक अस्तित्व का जागरण व विकास की दृष्टि खो जाएगी।

राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था
(A System of National Education)

कुछ बुनियादी विचार (Some Preliminary Ideas)

1924 के संस्करण में प्रकाशक का नोट

ये लेख (essays) सर्वप्रथम वर्ष 1910 में *कर्मयोगी* में प्रकाशित हुए थे। हालाँकि, ये अधूरे हैं, और कुछ विशिष्ट उल्लेखों को छोड़कर राष्ट्रीय शिक्षा विशेष के विषय को नहीं छूते। लेखक का इरादा यह नहीं था कि उन्हें उनके वर्तमान स्वरूप में पुनर्मुद्रित किया जाए, लेकिन परिस्थितियों ने इसे अनिवार्य बना दिया है कि एक अधिकृत संस्करण को सामने लाया जाए। जैसा कि यह वर्तमान में है, पुस्तक में कई परिचयात्मक लेख हैं जो शिक्षण की एक मजबूत व्यवस्था के ऐसे कुछ सामान्य सिद्धान्तों पर जोर देते हैं जो किसी भी देश में राष्ट्रीय शिक्षा के अधिकांश भाग पर लागू होते हैं। इस रूप में यह भारत में राष्ट्रीय शिक्षा के विषय में एक आंशिक परिचय हो सकता है।

I

मानव मन

(The Human Mind)

शिक्षा का वास्तविक आधार मानव मन का, नवजात, किशोर और वयस्क का अध्ययन है। अकादमिक पूर्णता के सिद्धान्तों के आधार पर गढ़ी गई कोई भी शिक्षा व्यवस्था, जो अध्ययन के उपकरण को अनदेखा करती है, बहुत सम्भव है कि वह एक सम्पूर्ण तथा पूर्ण रूप से सज्जित मन के निर्माण के बजाय बौद्धिक विकास को नुकसान पहुँचाए और उसे विकृत कर दे। शिक्षाविदों को जिसके साथ काम करना होता है वह एक मृत सामग्री नहीं है जैसा कि कलाकार अथवा मूर्तिकार के मामले में होता है, बल्कि वह एक बहुत अधिक परिष्कृत और संवेदनशील जीव है। वह मानव काष्ठ अथवा शिला से एक शैक्षिक उत्कृष्ट कृति को आकार नहीं दे सकता; उसे मन के दुर्ग्राह्य (हाथ न आने वाले – elusive) पदार्थ के साथ कार्य करना होता है और भंगुर मानव शरीर द्वारा आरोपित सीमाओं का सम्मान करना होता है।

इस बात को लेकर कोई सन्देह नहीं हो सकता है कि यूरोप की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था, प्राचीन काल के कई तरीकों से उन्नत है, लेकिन इसके दोष भी सुस्पष्ट हैं। यह मानव मनोविज्ञान के अपर्याप्त ज्ञान पर आधारित है, और यह यूरोप में केवल सामान्य छात्रों के द्वारा शामिल प्रक्रियाओं पर अधीनता की अस्वीकृति, केवल उतना अध्ययन करने की आदत जिससे कि वह दण्ड से बच सके अथवा आगामी परीक्षा में उत्तीर्ण हो सके, उसके सक्रिय आदतों एवं जोशपूर्ण शारीरिक श्रम की शरण में होने के कारण, भयावह परिणामों से सुरक्षित है। भारत में इस व्यवस्था के घातक परिणाम तन, मन और चरित्र पर बहुत स्पष्ट नजर आते हैं। एक राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था में पहली समस्या यह है कि तनाव और रटने की बुराइयों के बिना शिक्षा को यूरोपीय जैसा व्यापक तथा अधिक गहनता से दिया जाए। यह केवल तभी किया जा सकता है जब ज्ञान के उपकरणों का अध्ययन किया जाए और एक ऐसी शिक्षण व्यवस्था की तलाश की जाए जो प्राकृतिक, सहज तथा प्रभावी हो। यह केवल इन उपकरणों को उनकी सर्वोच्च क्षमता तक सुदृढ़ और धारदार किए जाने से ही होगा जिससे कि उन्हें आधुनिक परिस्थितियों द्वारा वांछित बढ़े हुए कार्य के लिए प्रभावी बनाया जा सके। मस्तिष्क की माँसपेशियों को सरल तथा आसान माध्यमों द्वारा अवश्य ही अच्छी तरह से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए; तब, और तब तक नहीं, जब तक कि उनसे बौद्धिक शक्ति के महान पराक्रम की आवश्यकता नहीं हो।

सच्चे शिक्षण का पहला सिद्धान्त है कि कुछ भी सिखाया नहीं जा सकता। शिक्षक एक अनुदेशक अथवा कार्यपालक नहीं है, वह एक सहायक और मार्गदर्शक है। उसका कार्य सुझाव देना है न कि थोपना। वह वास्तव में छात्र के मन को प्रशिक्षित नहीं करता है, वह केवल यह दिखाता है कि अपने ज्ञान के साधनों को सटीक कैसे बनाए और उसे इस प्रक्रिया में सहायता और प्रोत्साहित करता है। वह उसे ज्ञान प्रदान नहीं करता है, वह यह दिखाता है कि स्वयं के लिए ज्ञान का अर्जन किस प्रकार किया जाए। वह उस ज्ञान को बाहर नहीं लाता, जो भीतर मौजूद है; वह उसे केवल यह दिखाता है कि यह कहाँ अवस्थित है तथा इसे सतह पर किस प्रकार से लाया जा सकता है। वह विशिष्टता जो इस सिद्धान्त को किशोर और वयस्क मन के शिक्षण के लिए सुरक्षित रखती है तथा बच्चे के लिए इसके प्रयोग से मना करती है, वह एक रूढ़िवादी और नासमझी भरा सिद्धान्त है। बच्चा हो या व्यक्ति, लड़का हो या लड़की, सभी के लिए अच्छे शिक्षण का केवल एक सही सिद्धान्त है। आयु में अन्तर केवल आवश्यक सहायता और मार्गदर्शन की मात्रा को घटाता अथवा बढ़ाता है; यह उसकी प्रकृति में बदलाव नहीं लाता।

दूसरा सिद्धान्त यह है कि मन को स्वयं के विकास में परामर्श देना होगा। माता-पिता या शिक्षक द्वारा बच्चे को ठोक-पीट कर वांछित आकार देना बर्बर और अज्ञानतापूर्ण अन्धविश्वास है। यह वह स्वयं है जिसे अपनी प्रकृति के अनुसार विस्तार करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। माता-पिता के लिए इससे बड़ी कोई त्रुटि नहीं हो सकती कि उनका बेटा किन्हीं विशेष गुणों, क्षमताओं, विचारों, सद्गुणों, अथवा एक पूर्व-निर्धारित करियर के लिए तैयार रहे। प्रकृति को अपने धर्म को छोड़ने के लिए मजबूर करना इसे स्थाई नुकसान पहुँचाना, इसके विकास को बुरी तरह बिगाड़ देना और इसकी पूर्णता को विकृत कर देना है। यह किसी मानव आत्मा पर एक स्वार्थी अत्याचार है, देश पर एक घाव है, जो एक व्यक्ति द्वारा दिए जा सकने वाले सर्वोत्कृष्ट लाभों को खो देता है तथा कुछ अपूर्ण एवं कृत्रिम, दोयम दर्जे के, लापरवाही से किए गए और सामान्य को स्वीकार करने के लिए बाध्य होता है। हर व्यक्ति में कुछ दैवीय, कुछ उसका स्वयं का, शक्ति और पूर्णता का मौका है, चाहे वह कितने भी लघु क्षेत्र में हो जो ईश्वर द्वारा उसे स्वीकार अथवा अस्वीकार करने के लिए प्रदान किया जाता है। प्रदत्त कार्य इसकी तलाश करना, इसे विकसित करना और उपयोग में लाना है। शिक्षा का मुख्य लक्ष्य विकसित हो रही आत्मा की इस बात में सहायता करना होना चाहिए कि उसमें जो सर्वश्रेष्ठ है, वह बाहर लाया जाए और इसे एक श्रेष्ठ उपयोग के लिए सटीक बनाया जाए।

शिक्षा का तीसरा सिद्धान्त निकट से दूर की ओर कार्य करना है, जहाँ कुछ है वहाँ से जो होना चाहिए वहाँ तक। मानव की प्रकृति का आधार उसकी आत्मा के अतीत, उसकी आनुवंशिकता,

उसके परिवेश, उसकी राष्ट्रीयता, उसके देश, वह मिट्टी जिसमें से वह अवलम्ब प्राप्त करता है, वह हवा जिसमें वह साँस लेता है, जगहें, आवाजें, आदतें जिनका वह आदी है, के अलावा लगभग हमेशा होता है। असंवेदनशील होने के कारण वे उसे कम शक्तिशाली तरीके से नहीं ढालते हैं। तभी से हमें शुरुआत करनी चाहिए। हमें प्रकृति को पृथ्वी से जड़ों से नहीं उठाना चाहिए, जिसमें कि इसे अवश्य विकसित होना चाहिए अथवा मन को एक जीवन की छवियों और विचारों के साथ घेरना चाहिए, जो उससे अलग है जिसमें उसे शारीरिक रूप से आगे बढ़ना चाहिए। यदि किसी चीज को बाहर से भीतर लाना है, इसे अवश्य ही प्रस्तुत किया जाना चाहिए न कि मन पर लादना चाहिए। एक मुक्त तथा स्वाभाविक वृद्धि सच्चे विकास की शर्त है। ऐसी आत्माएँ होती हैं जो स्वाभाविक रूप से अपने वातावरण से विद्रोह करती हैं और ऐसा लगता है कि वे अन्य ही युग तथा जलवायु से हैं। उन्हें अपने झुकाव का अनुसरण करने के लिए स्वतंत्र रहने दें; लेकिन बहुमत नष्ट हो जाता है, खोखला हो जाता है, कृत्रिम हो जाता है यदि उसे कृत्रिम तरीके से एक अन्य देशीय आकार में ढाला जाता है। यह मानव जाति के लिए ईश्वर की व्यवस्था है कि उन्हें एक विशेष राष्ट्र, आयु, समाज से सम्बन्धित होना चाहिए ताकि वे अतीत के बच्चे हों, वर्तमान के स्वामी, भविष्य के निर्माता हों। अतीत हमारी आधारशिला है, वर्तमान हमारी सामग्री है, भविष्य हमारा लक्ष्य और शिखर सम्मेलन है। शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली में प्रत्येक का नियत तथा प्राकृतिक स्थान होना चाहिए।

II

मन की शक्तियाँ (The Powers of the Mind)

शिक्षाविदों का उपकरण है मन अथवा अन्तःकरण, जिसकी चार परतें होती हैं। अतीत की मानसिक छापों का भण्डार, चित्त अथवा स्मृति का भण्डार, जिसे स्मृति के विशिष्ट कार्य से अलग किया जा सकता है, वह ऐसी बुनियाद है जिसपर अन्य सभी परतें खड़ी होती हैं। सभी अनुभव हमारे भीतर निष्क्रिय अथवा सम्भावित स्मृति के रूप में मौजूद होते हैं; सक्रिय स्मृति द्वारा इस भण्डार से वह ले लिया जाता है जिसकी इसे आवश्यकता होती है। परन्तु सक्रिय स्मृति उस व्यक्ति की तरह है जो एक ताले में बन्द पड़े विशाल ढेर में से सामग्री की तलाश कर रहा हो : कभी-कभी वह उस चीज को नहीं ढूँढ़ पाता जिसकी वह तलाश कर रहा है; अकसर अपनी तेजी से की गई तलाश में वह बहुत-सी ऐसी चीजों से रूबरू हो जाता है जिनकी उसे तत्काल आवश्यकता नहीं होती है; अकसर वह चूक भी कर देता है और सोचता है कि उसने वास्तविक वस्तु को पा लिया है जबकि वह कुछ और होती है, जिसे उसने अपने हाथों में लिया है वह मूल्यहीन न भी हो तो अप्रासंगिक होती है। निष्क्रिय स्मृति या चित्त को किसी प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती, यह स्वचालित और अपने कार्य में प्राकृतिक रूप से पर्याप्त है; इसके क्षेत्र में आने वाली ज्ञान की कोई बहुत जरा-सी वस्तु भी ऐसी नहीं जो सुरक्षित न हो, जिसे त्रुटिहीन तरीके से उस प्रशंसित पात्र धारक में सुरक्षित न किया गया हो। यह सक्रिय स्मृति है, एक उच्च परन्तु कम सटीक रूप से विकसित कार्य, जिसे सुधार की आवश्यकता है।

दूसरी परत सुचारु मन अथवा मानस है, हमारे भारतीय मनोविज्ञान की वह छठी इन्द्रिय, जिसमें अन्य सभी एकत्रित होते हैं। मन का कार्य वस्तुओं की छवियों को प्राप्त करना है जो पाँच इन्द्रियों द्वारा दृष्टि, आवाज, गन्ध, स्वाद और स्पर्श में परिवर्तित होती हैं तथा पुनः इन्हें विचार-अनुभूतियों (thought-sensations) में परिवर्तित कर देते हैं। यह खुद के द्वारा प्रत्यक्ष पकड़ से भी छवियाँ प्राप्त करता है और उन्हें मानसिक छापों में परिवर्तित कर देता है। ये अनुभूतियाँ तथा छाप विचारों की वस्तु हैं, अपने-आप में विचार नहीं हैं; परन्तु यह बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है कि विचार पर्याप्त और सटीक सामग्री पर कार्य कर सके। इसीलिए शिक्षाविद् का पहला कार्य बच्चों में छह इन्द्रियों का सही विकास करना है, यह देखना कि उनकी वृद्धि सीमित न रह जाए या उपयोग न होने से चोटिल न हो जाएँ, बल्कि छात्र द्वारा स्वयं शिक्षक के

निर्देशन में पूर्ण सटीकता से प्रशिक्षित किए जाएँ तथा उन्हें सूक्ष्म रूप से वैसे संवेदनशील रखा जाए जिसके लिए वे सक्षम हैं। इसके अतिरिक्त, कार्य से जुड़े अंगों से जो कुछ भी सहयोग प्राप्त हो सकता है, उसे पूर्ण रूप से उपयोग में लाया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, हाथों को उन चीजों के पुन: उत्पादन के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए जिसे आँखें देखती हैं और मन महसूस करता है। आवाज को ज्ञान की एक सम्पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए जिसे पूरे अन्तःकरण द्वारा धारण किया जाता है।

तीसरी परत है मेधा या बुद्धि, जो विचारों का वास्तविक उपकरण है और वह जो आदेश देता है अथवा यंत्र के अन्य भागों द्वारा प्राप्त किए गए ज्ञान का निपटान करता है। शिक्षाविद् के उद्देश्य के लिए यह बहुत हद तक मेरे द्वारा उल्लेख किए गए तीन में से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। बुद्धि एक अंग है जो विभिन्न कार्यों के समूहों का बना हुआ है, जिसे दो महत्त्वपूर्ण वर्गों में विभक्त किया जा सकता है, दाहिने हाथ के कार्य और संकाय (faculties) एवं बाएँ हाथ के कार्य एवं संकाय। दाएँ हाथ के संकाय व्यापक, सृजनात्मक तथा संश्लेषित हैं; बाएँ हाथ के संकाय आलोचनात्मक और विश्लेषणात्मक हैं। दाएँ हाथ में निर्णय, कल्पना, स्मृति, अवलोकन होता है; बाएँ हाथ में तुलना और तर्कबुद्धि है। आलोचनात्मक संकाय अन्तर, तुलना, वर्गीकरण, सामान्यीकरण, निगमन, निष्कर्ष, सार बताते हैं; वे तार्किकता के घटक अंग हैं। दाएँ हाथ के संकाय अपने स्वयं के अधिकार में समझते हैं, नियंत्रण रखते हैं, निर्णय करते, थामते, पकड़ बनाते और हेरफेर करते हैं। दाएँ हाथ का मस्तिष्क ज्ञान का स्वामी है जबकि बाएँ हाथ का सेवक। बायाँ हाथ केवल ज्ञान के स्वरूप को स्पर्श करता है, दायाँ हाथ इसकी आत्मा में भीतर उतरता है। बायाँ हाथ स्वयं को निश्चित सत्य तक सीमित रखता है, दायाँ हाथ उसे पकड़ता है जो अभी भी मायावी अथवा अनिश्चित है। दोनों ही मानव के तर्क की सम्पूर्णता के लिए अनिवार्य हैं। यदि बच्चे की शिक्षा अपूर्ण तथा एकतरफा नहीं होनी है, यंत्र के इन सभी महत्त्वपूर्ण कार्यों को सभी को अपनी उच्चतम और बेहतरीन कार्यशक्ति तक उठाना पड़ता है।

संकाय की एक चौथी परत है, जो मनुष्य में अभी पूरी तरह से विकसित नहीं हुई है, वह धीरे-धीरे व्यापक विकास और अधिक परिपूर्ण विकास को प्राप्त कर रही है। ज्ञान के इस उच्चतम स्तर की अजीब शक्तियाँ हमें मुख्य रूप से प्रतिभा की घटनाओं द्वारा ज्ञात हैं, – सम्प्रभु विवेक (sovereign discernment), सत्य की सहज अनुभूति, भाषा की पूर्ण प्रेरणा, ज्ञान की प्रत्यक्ष दृष्टि, अकसर एक हद तक रहस्योद्घाटन के समान है, जो व्यक्ति को सत्य का एक पैगम्बर बनाती हैं। ये शक्तियाँ अपने उच्च विकास में दुर्लभ हैं, जबकि कई लोगों में यह अपूर्ण रूप में या अंश रूप में होती हैं। वे अभी भी मानव जाति के आलोचनात्मक तर्क के कारण बहुत अधिक विचलित हैं, यह त्रुटि, सनक और एक पक्षपाती परिकल्पना के मिश्रण के कारण है जो सटीक

रूप से कार्य करने को बाधित और विकृत करता है। तथापि यह स्पष्ट है कि यदि इसे इन संकायों द्वारा सहायता न प्राप्त हुई होती तो मानवता अपने वर्तमान स्तर तक नहीं पहुँची होती, तथा यह एक प्रश्न है जिससे कि शिक्षाविद् गुत्थम-गुत्था नहीं हुए हैं, इस शक्तिशाली और चक्कर में डालने वाले तत्त्व के साथ जो कुछ भी किया जाना है वह छात्रों में प्रतिभा का तत्त्व है। मात्र निर्देश देने वाला व्यक्ति इस प्रतिभा को हतोत्साहित करने का हर सम्भव प्रयास करता है जबकि एक अधिक उदार शिक्षक इसका स्वागत करता है। मानव सभ्यता के लिए इतने महत्त्वपूर्ण संकायों को हमारे विचारों से बाहर नहीं रखा जा सकता। इनकी उपेक्षा करना मूर्खतापूर्ण है, इन्हें हतोत्साहित करना आपराधिक है। उनके अपूर्ण विकास को सटीक बनाया जाना चाहिए, त्रुटि, सनक और पक्षपाती परिकल्पना (fancifulness) के मिश्रण को सावधानीपूर्वक तथा बुद्धिमत्ता के साथ हटाया ही जाना चाहिए। परन्तु शिक्षक यह नहीं कर सकता; यदि वह हस्तक्षेप करता है तो वह अच्छी मकई (good corn) के साथ-साथ मोठ घास (tares) को भी बाहर कर देगा। यहाँ, जैसा कि सभी शैक्षिक कार्यप्रणालियों में होता है, वह केवल विकसित हो रही आत्मा को इसके स्वयं से सटीक होने के मार्ग पर डाल सकता है।

III

नैतिक प्रकृति (The Moral Nature)

व्यक्ति की अर्थव्यवस्था में मानसिक प्रकृति का आधार नैतिक होता है, तथा नैतिक और भावनात्मक प्रकृति की पूर्णता से सम्बन्ध-विच्छेद की हुई बुद्धि की शिक्षा मानव प्रगति के लिए हानिकर है। फिर भी, जबकि किसी प्रकार की पाठ्यचर्या या पाठ्यक्रम की व्यवस्था करना आसान है जो मन के प्रशिक्षण के लिए पर्याप्त रूप से अच्छा करेगा, तथापि, अभी तक इसे सम्भव नहीं पाया गया है कि आधुनिक परिस्थितियों के अन्तर्गत विद्यालय एवं महाविद्यालय में एक उपयुक्त नैतिक प्रशिक्षण प्रदान किया जा सके। नैतिक और धार्मिक पाठ्यपुस्तकों के पढ़ाए जाने से बालकों को नैतिक और धार्मिक बनाए जाने का प्रयास एक गुमान और एक भ्रम है, सटीक रूप से इसलिए क्योंकि हृदय मन नहीं है और मन को निर्देशित करने से आवश्यक नहीं है कि हृदय में सुधार हो। यह कहना एक गलती होगी कि इसका कोई भी प्रभाव नहीं है। यह अन्तःकरण में विचारों के कुछ बीजों का रोपण करता है और, यदि ये विचार आदत बन जाते हैं तो वे व्यवहार को प्रभावित करते हैं। परन्तु नैतिक पाठ्यपुस्तकों का खतरा यह है कि वे उच्च वस्तुओं के चिन्तन को यांत्रिक और कृत्रिम बना देंगे, और जो कुछ भी यांत्रिक व कृत्रिम है वह अच्छे के लिए अक्रिय है।

ऐसी तीन चीजें हैं जो मानव की नैतिक प्रकृति के सन्दर्भ में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, भावनाएँ, संस्कार या निर्मित आदतें व सम्बन्ध, और स्वभाव या प्रकृति। उसके लिए स्वयं को नैतिकता के अनुरूप प्रशिक्षित करने का एकमात्र तरीका यह है कि वह अपने-आप में सही भावनाओं, सही सम्बन्धों, सर्वश्रेष्ठ मानसिक, भावनात्मक और शारीरिक आदतों को अपनाए और अपनी आवश्यक प्रकृति के मौलिक आवेगों की सही कार्यवाही की आदत डाले। आप कुछ विशिष्ट अनुशासन बच्चों पर आरोपित कर सकते हैं, उन्हें एक विशिष्ट साँचे में तैयार कर सकते हैं, एक वांछित मार्ग पर धकेल सकते हैं, परन्तु जब तक आप उनके हृदय तथा प्रकृतियों को अपने पक्ष में नहीं करेंगे, यह इस थोपे गए नियम के अनुरूप एक पाखण्डी और हृदयहीन, एक पारम्परिक, अकसर कायरतापूर्ण अनुपालन बन जाता है। यह वही है जो यूरोप में किया जाता है, और यह उस उल्लेखनीय घटना की ओर ले जाता है जिसे जंगली जई की बुआई (sowing of wild oats) के रूप में जाना जाता है जैसे ही विद्यालय और घर के अनुशासन के जोड़ (yoke of discipline) निकाल दिए जाते हैं, और सामाजिक पाखण्ड की ओर ले जाता है जो यूरोपीय

जीवन की एक बड़ी विशेषता है। मनुष्य जिसकी प्रशंसा करता है और जिसे स्वीकार करता है, वह उसका एक अंग बन जाता है; शेष एक मुखौटा है। वह घर और विद्यालय की नैतिक दिनचर्या के अनुरूप समाज के अनुशासन के अनुरूप है, परन्तु अपनी पसन्द और जुनून के अनुसार अपने वास्तविक जीवन, आन्तरिक और निजी मार्गदर्शन के लिए स्वयं की स्वतंत्रता पर विचार करता है। दूसरी तरफ, नैतिक और धार्मिक शिक्षा की उपेक्षा करना पूरी तरह से जाति को भ्रष्ट करना है। बचा लेने वाले स्वदेशी आन्दोलन से पहले हमारे युवा पुरुषों में कुख्यात नैतिक भ्रष्टाचार, अँग्रेजी शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत दिए जाने वाले सम्पूर्ण रूप से मानसिक निर्देशों का प्रत्यक्ष प्रमाण था। केन्द्रीय हिन्दू महाविद्यालय जैसे संस्थानों में एक भारतीय भेष के तहत अँग्रेजी प्रणाली को अपनाने से यूरोपीय परिणाम आने की सम्भावना है। इसके लिए केवल यही कहा जा सकता है कि यह कुछ भी न होने से बेहतर है।

जैसा कि मन की शिक्षा में है, उसी प्रकार हृदय की शिक्षा में भी है, इनमें बच्चे को अपनी सम्पूर्णता के सही मार्ग पर ले जाने का सर्वोत्तम तरीका उसे इस मार्ग पर चलने के लिए, उसपर दृष्टि रखते हुए, सहायता करते, परन्तु हस्तक्षेप न करते हुए, उसे प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इंग्लिश बोर्डिंग स्कूल में एक सर्वोत्कृष्ट तत्त्व यह है कि गुरु अपने सबसे अच्छे रूप में एक नैतिक मार्गदर्शक और उदाहरण के रूप में खड़ा होता है, जो लड़कों को बड़े पैमाने पर प्रभावित करने तथा उन्हें चुपचाप दिखाए गए मार्ग का अनुसरण करने में एक दूसरे की सहायता करने के लिए छोड़ देता है। परन्तु यह तरीका बाहरी अनुशासन की अधिकता के कारण अशोधित और धब्बेदार (marred) है, जिसके लिए छात्रों में भय के सिवाय कोई सम्मान नहीं है, और आन्तरिक सहायता की अतिशयता (exiguity) है। जो बहुत थोड़ा अच्छा किया जाता है वह बुराई की अधिकता के भार से दब जाता है। गुरु की पुरानी भारतीय प्रणाली जो उसके ज्ञान और पवित्रता की अन्तर्निहित आज्ञाकारिता, सटीक प्रशंसा, छात्र के आदरपूर्ण अनुसरण (reverent emulation) द्वारा नियंत्रित थी, वह नैतिक आज्ञाकारिता का एक काफी बेहतर तरीका था। उस प्राचीन प्रणाली की पुनर्स्थापना असम्भव है; परन्तु काम पर रखे गए अनुदेशक अथवा परोपकारी पुलिस की तरह के, जैसा कि यूरोपीय प्रणाली द्वारा सामान्य रूप से उसे बनाया जाता है, अध्यापक को एक मित्र, मार्गदर्शक और सहायक से बदला जाना असम्भव नहीं है।

नैतिक प्रशिक्षण का पहला नियम सुझाव देना और आमंत्रित करना है, न कि आदेश देना तथा आरोपित करना। सुझाव देने का सर्वश्रेष्ठ तरीका व्यक्तिगत उदाहरण के द्वारा, दैनन्दिन संवाद और हर दिन पढ़ी जाने वाली किताबों के माध्यम से है। इन किताबों में, युवा छात्रों के लिए, दिए गए अतीत के उदात्त उदाहरण (lofty examples), नैतिक पाठ के रूप में नहीं बल्कि सर्वोच्च मानवीय हित की बातों के रूप में होने चाहिए, और, बड़ी आयु के छात्रों के लिए, महान

आत्माओं के महान विचार, साहित्य के छन्द जो सर्वोच्च भावनाओं को प्रदीप्त तथा सर्वोच्च आदर्शों और महत्त्वाकांक्षाओं को प्रेरित करते हैं, इतिहास के दस्तावेज और जीवनियाँ जो उन महान विचारों, महान भावनाओं तथा आकांक्षी आदर्शों के होने के उदाहरण देते हैं, होने चाहिए। यह एक अच्छे साथ का, सत्संग का उदाहरण है, जो प्रभाव छोड़ने में शायद ही कभी असफल होता है, जब तक कि भावुक प्रवचन से बचा जाता है, और सर्वाधिक प्रभाव वाला बन जाता है यदि शिक्षक का व्यक्तिगत जीवन स्वयं ही उन महान चीजों से गढ़ा हुआ हो जो वह अपने छात्रों के सामने रखता है। हालाँकि, जब तक कि युवा जीवन को, इसके सीमित क्षेत्र के भीतर, उनके भीतर उठने वाले नैतिक आवेगों में संगठित अपने कार्य के लिए कोई मौका नहीं दिया जाता है, तब तक यह पूरी तरह प्रभावी नहीं हो सकता। ब्राह्मण की ज्ञान प्राप्ति की प्रबल कामना, आत्म-अनुराग, शुद्धता, आत्मत्याग, – क्षत्रिय का साहस, उत्साह, प्रतिष्ठा, कुलीनता, शौर्य, राष्ट्रप्रेम, – वैश्य की उपकारिता, कौशल, परिश्रम, उदार उद्यम तथा विशाल मुक्त-हस्तता, – शूद्र का आत्म-विलोपन और प्रेमपूर्वक सेवा, – यह सभी आर्य के गुण हैं। वे उस नैतिक प्रवृत्ति का निर्माण करते हैं जिसकी आकांक्षा हम पूरे राष्ट्र में, अपने युवाओं में करते हैं। परन्तु यदि हम युवाओं को अवसर नहीं प्रदान करेंगे कि वे स्वयं को आर्यन परम्परा में प्रशिक्षित करें, अपने बालपन एवं किशोरावस्था में उन बातों का अभ्यास व अन्तरंगता द्वारा निर्माण करें जिनसे उनका वयस्क जीवन बना होना चाहिए, हम उन्हें कैसे प्राप्त कर सकते हैं?

इसलिए, प्रत्येक बालक को, उसकी प्रकृति में मौजूद प्रत्येक श्रेष्ठ गुण के विकास के लिए व्यवहारिक अवसर के साथ-ही-साथ बौद्धिक प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। यदि उसमें दुर्गुण हैं, बुरी आदतें, बुरे संस्कार हैं, चाहे वे मन के हों अथवा शरीर के, उसके साथ अपराधी की तरह कठोर व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि उसे संयम की राजयोगिक विधि (Rajayogic method) द्वारा, बहिष्करण एवं प्रतिस्थापन द्वारा, उनसे छुटकारा पाने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। उसे उनके बारे में, पाप अथवा अपराध की तरह न सोचकर एक साध्य रोग के लक्षणों की तरह सोचने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जिसमें इच्छाशक्ति के स्थिर एवं निरन्तर प्रयासों द्वारा बदलाव लाया जा सकता है, – मन में जब भी असत्य उत्पन्न हो, उसे नकारते हुए सत्य द्वारा, भय को साहस से, स्वार्थ को बलिदान और त्याग से, दुर्भावना को प्रेम से बदला जाना चाहिए। इस बात के लिए बहुत ध्यान रखा जाना होगा कि अरचित सद्गुणों को दोष मानकर खारिज न कर दिया जाए। कई युवा प्रकृतियों का उन्माद एवं लापरवाही केवल अत्यधिक शक्ति, महानता और कुलीनता का अतिप्रवाह हैं। उन्हें शुद्ध किया जाना चाहिए, न कि हतोत्साहित।

मैंने नैतिकता की बात की है; यह आवश्यक है कि धार्मिक शिक्षण के विषय में भी थोड़ी बात की जाए। एक प्रचलित विचित्र विचार यह है कि धार्मिक सिद्धान्तों के शिक्षण मात्र से बच्चे नेकचलन एवं नैतिक बनाए जा सकते हैं। यह एक यूरोपीय त्रुटि है, और इसका अभ्यास या तो एक पन्थ की यांत्रिक स्वीकृति हो जाती है, जिसका आन्तरिक जीवन पर कोई प्रभाव नहीं होता और बाहरी जीवन पर बहुत थोड़ा प्रभाव होता है, अथवा यह एक कट्टरपन्थी (fanatic), दिखावटी (pietist), कर्मकाण्डी (ritualist) अथवा अभद्र पाखण्डी (unctuous hypocrite) पैदा करता है। धर्म को जिया जाना चाहिए, न कि एक पन्थ की तरह सीखा जाना। बंगाल की तथाकथित राष्ट्रीय शिक्षा में किया गया विचित्र समझौता, जिसमें धार्मिक मान्यताओं के शिक्षण को अनिवार्य कर दिया गया है, परन्तु अनुष्ठान अथवा धार्मिक रीतियों के अभ्यासों को वर्जित किया गया है, वह अज्ञानतापूर्ण भम्र का एक नमूना है जो मनुष्य के मन को इस विषय में भटका देता है। यह निषेध प्रत्यक्ष या छिपाई हुई धर्मनिरपेक्षता को एक रिश्वत (sop) है। किसी भी धार्मिक शिक्षण का कोई मूल्य नहीं है जब तक कि यह जिया न जाए, और विभिन्न प्रकार की साधना, आध्यात्मिक आत्म-प्रशिक्षण तथा अभ्यास का उपयोग किया जाता है, यही धार्मिक जीवन के लिए एकमात्र प्रभावी तैयारी है। प्रार्थना, श्रद्धांजलि, अनुष्ठान की रस्म एक आवश्यक तैयारी के रूप में कई मनों के द्वारा चाही जाती है तथा, यदि यह अपने-आप में एक समापन को प्राप्त नहीं करती है, तो यह आध्यात्मिक प्रगति के लिए एक बड़ी मदद है; यदि इसे रोक दिया जाता है, तो ध्यान, भक्ति अथवा धार्मिक दायित्व को अनिवार्य रूप से इसके स्थान पर रखा जाना चाहिए। अन्यथा, धार्मिक शिक्षण बहुत कम उपयोग का है और इसे त्याग दिया जाना ही बेहतर होगा।

परन्तु चाहे किसी भी प्रकार के धर्म में कोई विशिष्ट शिक्षण प्रदान किया गया हो अथवा नहीं, धर्म का सार, कि इनमें ईश्वर के लिए, मानवता के लिए, देश के लिए, दूसरों के लिए तथा स्वयं के लिए जीने को प्रत्येक उस विद्यालय में आदर्श बनाया जाना चाहिए जो स्वयं को राष्ट्रीय कहता है। यह हमारे विद्यालयों में व्याप्त हिन्दुत्व की भावना है जो भारतीय विषयों से कहीं अधिक विद्यमान है, भारतीय विधियों का उपयोग अथवा हिन्दू मान्यताओं और हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में औपचारिक निर्देश, हमारे विद्यालयों में राष्ट्रवाद का सार होना चाहिए जो उन्हें अन्य सभी से अलग करता है।

IV

एक साथ होने वाला और आनुक्रमिक शिक्षण
(Simultaneous and Successive Teaching)

आधुनिक प्रशिक्षण जो भारत में *रिडक्सियो एड एबसर्डम* (*reductio ad absurdum* – reduction to the absurd) के अधीन रही है उसकी एक बहुत उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसमें शिक्षण का अभ्यास टुकड़ों में किया जाता है। एक विषय को एक समय में थोड़ा पढ़ाया जाता है, अन्य समूहों के साथ संयोग में, इस परिणाम के साथ कि एक ही साल में जो अच्छी तरह से सीखा जा सकता है वह सात सालों में बुरी तरह से सीखा जाता है और इससे बालक अधूरी तैयारी के साथ बाहर जाता है, जिसे ज्ञान के अपूर्ण साजो-सामान के साथ प्रस्तुत किया जाता है, और वह मानव ज्ञान के प्रमुख विभागों में से किसी का भी महारथी नहीं होता। राष्ट्रीय परिषद् द्वारा अपनाई गई शिक्षा प्रणाली, एक उभयचर और द्वन्द्वात्मक रचना है जो मध्य में तथा नीचे टुकड़ों में शिक्षण का प्रयास करती है और अचानक इसे शीर्ष पर एक भव्य विशेषज्ञवाद (grandiose specialism) में बदल देती है। यह एक त्रिभुज को उसके शिखर की ओर से रखने का प्रयास है, यह सोचते हुए कि वह इस तरह खड़ा हो जाएगा।

पुरानी परम्परा एक अथवा दो विषयों को अच्छी तरह एवं विस्तारपूर्वक पढ़ाने की थी और तब आगे अन्य विषयों की ओर बढ़ा जाता था, और निश्चित तौर पर यह आधुनिक की तुलना में कहीं अधिक तार्किक व्यवस्था थी। यह बहुत अधिक भिन्नतापूर्ण सूचनाएँ नहीं देती थी बल्कि अधिक गहरी, अधिक कुलीन और अधिक वास्तविक सभ्यता का निर्माण करती थी। औसत आधुनिक मन का अधिकांश छिछलापन, तर्कमूलक हल्कापन तथा चंचल अस्थिरता, टुकड़ों में प्रदान किए जाने वाले शिक्षण के अवगुणी सिद्धान्त (vicious principle) के कारण है। पुरानी प्रणाली के विरुद्ध जो एक दोष हो सकता है वह यह था कि सबसे पहले सीखा गया विषय छात्र के मन में मद्धिम पड़ सकता है, जबकि वह अपनी बाद की पढ़ाई में महारत प्राप्त कर रहा था। परन्तु पूर्वजों के द्वारा स्मृति को दिए गए उत्कृष्ट प्रशिक्षण ने घटना के इस दोष को कम कर दिया। भविष्य ज्ञान की शिक्षा में हमें स्वयं को प्राचीन या आधुनिक प्रणाली के द्वारा बाँधने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु केवल ज्ञान की सिद्धि के सर्वाधिक निपुण और तीव्र माध्यम के चयन की आवश्यकता है।

आधुनिक प्रणाली के बचाव में यह आरोप लगाया जाता है कि बच्चों के ध्यान में आसानी से थकावट आ जाती है और उन्हें किसी एक विषय पर लम्बे उपयोग के लिए तनाव के अधीन नहीं किया जा सकता है। विषय में बारम्बार बदलाव मन को आराम देता है। यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है, क्या आधुनिक समय के बच्चे प्राचीन समय के बच्चों से इतने भिन्न हैं, और, यदि ऐसा है, क्या हमने लम्बी अवधि के ध्यान-केन्द्रण को हतोत्साहित कर उन्हें ऐसा नहीं बना दिया है? एक बहुत छोटा बच्चा, वस्तुतः, अपने-आप को काम में नहीं लगा सकता है; लेकिन एक बहुत छोटा बच्चा किसी भी प्रकार के विद्यालयी शिक्षण के लिए अनुपयुक्त है। सात या आठ वर्ष की आयु का बच्चा, और यह किसी भी प्रकार के नियमित अध्ययन को प्रारम्भ किए जाने की सबसे प्रारम्भिक अनुमति-प्राप्त आयु है, अच्छे-खासे ध्यान-केन्द्रण में सक्षम है यदि उसे इसमें रुचि है। आखिरकार, रुचि ही ध्यान-केन्द्रण का आधार है। हम बच्चे के पाठों को उसके लिए अत्यधिक अरुचिपूर्ण और विकर्षक बनाते हैं, शिक्षण का आधार एक रूखी बाध्यता को बनाते हैं और तब उसकी बेचैन लापरवाही की शिकायत करते हैं! वर्तमान अप्राकृतिक प्रणाली को बच्चे द्वारा एक प्राकृतिक आत्म-निगमन से बदले जाने पर यह अक्षमता की आपत्ति को हटा देगा। एक आदमी की तरह ही, एक बच्चा, यदि उसे रुचि है, अपने विषय को अधूरा छोड़ देने के बजाय उसके अन्त तक जाना पसन्द करता है। उसे आगे बढ़ाने के लिए कदम-दर-कदम, प्रत्येक आने वाले विषय में रुचि लेने तथा उसमें गहन रूप से शामिल किए जाने के लिए तब तक काम किया जाना होगा जब तक कि उसे इसमें महारत न प्राप्त हो जाए, यही सच्ची शिक्षण कला है।

शिक्षक का पहला ध्यान माध्यम और उपकरणों पर होना चाहिए, तथा, जब तक ये सटीक न हो जाएँ, नियमित शिक्षण के विषयों को बहुगुणित करना समय और ऊर्जा की बर्बादी है। जब मानसिक उपकरण आसानी से और तेजी से भाषा अर्जन के लिए पर्याप्त रूप से विकसित होते हैं, यही वह समय होता है जब उसे कई भाषाओं से परिचित कराया जाना चाहिए, न कि तब जब वह आंशिक रूप से यह समझ पा रहा हो कि उसे क्या पढ़ाया जा रहा है और इसमें वह श्रमपूर्वक व अपूर्ण रूप से कुशलता प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त, वह व्यक्ति जिसने अपनी खुद की भाषा पर महारत हासिल कर ली है, उसके पास अन्य पर महारत हासिल करने के लिए एक अनिवार्य सुविधा है। व्यक्ति की अपनी भाषा में भाषाई संकाय के असन्तोषजनक रूप से विकसित होने के साथ, अन्य पर महारत प्राप्त करना असम्भव हो जाता है। केवल मामूली रूप से विकसित हुई अवलोकन, निर्णय, तर्क और तुलना की क्षमताओं के साथ विज्ञान का अध्ययन करना एक बेकार तथा बिना लाभ का कार्य है। ऐसा ही अन्य सभी विषयों के साथ है।

मातृभाषा शिक्षा का उचित माध्यम है और इसलिए बच्चे की शुरुआती ऊर्जाओं को इस माध्यम में गहन महारत प्राप्त करने की ओर निर्देशित किया जाना चाहिए। लगभग प्रत्येक बच्चे में एक परिकल्पना, शब्दों के लिए एक प्रवृत्ति, एक नाटकीय संकाय, विचारों की एक सम्पदा और उमंग होती है। इन्हें राष्ट्र के साहित्य और इतिहास में रुचि रखने वाला होना चाहिए। मूर्खतापूर्ण एवं शुष्क वर्तनी और पठन पुस्तकों के बजाय, जिन्हें एक नीरस तथा अप्रिय कार्य के तौर पर देखा गया है, उसे स्वयं के साहित्य के सबसे रुचिकर हिस्सों से और उसके चारों ओर तथा पीछे के जीवन से तीव्र प्रगतिशील चरणों में परिचित कराया जाना चाहिए, तथा उन्हें उसके सामने इस रूप में रखा जाना चाहिए कि वे उसके गुणों को आकर्षित करें एवं पसन्द आएँ जिनके बारे में मैंने बात की है। इस अवधि में अन्य सभी अध्ययनों को मानसिक क्रियाओं और नैतिक चरित्र को सम्पूर्ण बनाने की दिशा में समर्पित होना चाहिए। इस समय में इतिहास, विज्ञान, दर्शन, कला के अध्ययन के लिए आधारशिला रखी जानी चाहिए, परन्तु एक बाधक व औपचारिक तरीके से नहीं। हर बच्चा एक रुचिकर कहानी का प्रेमी, एक नायक उपासक और एक देशभक्त होता है। उसके अन्दर इन गुणों के लिए आकर्षण और उनके माध्यम से उसे राष्ट्र के इतिहास के जीवन्त तथा मानवीय हिस्सों के बारे में जाने बिना इसपर महारत हासिल करने दें। प्रत्येक छात्र एक जिज्ञासु, एक अन्वेषक, विश्लेषक, एक निर्दयी शरीर रचना विज्ञानी होता है। उसमें इन गुणों के प्रति आकर्षण लाना और इसे बिना जाने अर्जित करने देना वैज्ञानिक का सही स्वभाव और आवश्यक आधारभूत ज्ञान है। प्रत्येक बच्चे में एक अतृप्त बौद्धिक जिज्ञासा और अभौतिक पड़ताल (metaphysical enquiry) के लिए झुकाव होता है। इसका उपयोग उसे धीरे-धीरे संसार की तथा स्वयं की समझ बनाने की ओर ले जाने के लिए करें। प्रत्येक बच्चे में नकल का उपहार और कल्पना शक्ति का एक स्पर्श होता है। इसका उपयोग उसे कलाकार के संकाय का आधारभूत कार्य प्रदान करने के लिए करें।

यह प्रकृति को काम करने की अनुमति प्रदान करने से होता है कि हमें उन उपहारों का लाभ प्राप्त हो पाता है जो उसने हमें प्रदान किए हैं। बच्चों की शिक्षा में मानवता ने उसकी प्रक्रियाओं को विफल करने और बाधित करने के लिए चुना है और, ऐसा करने से, अपने स्वयं के आगे बढ़ने की तीव्रता को विफल करने और बाधित करने के लिए बहुत कुछ किया है। खुशी के साथ, अब समझदारीपूर्ण विचार प्रबल होने लगे हैं। लेकिन अब तक मार्ग नहीं मिला है। अतीत अपने समस्त पूर्वाग्रहों और त्रुटियों के साथ हमारी गर्दन के चारों तरफ लटका हुआ है तथा हमें नहीं छोड़ेगा; यह हमारे सर्वाधिक उग्र प्रयासों में प्रवेश करता है और सर्व-बुद्धिमान माता के मार्गदर्शन में वापस आता है। हममें अधिक स्पष्ट ज्ञान को लेने और निर्भय होकर भावी पीढ़ी के हित में इसका उपयोग करने का साहस होना चाहिए। टुकड़ों के द्वारा शिक्षण को अवश्य ही मृत दुःखों के कबाड़-घर में फेंक दिया जाना चाहिए। सबसे पहला कार्य बच्चे को जीवन में, काम में

और ज्ञान में रुचि दिलाना है, जिससे कि उसके ज्ञान के उपकरण सर्वोच्च सम्पूर्णता के साथ विकसित हों, उसे माध्यम में महारत दी जा सके जिसका उसे अनिवार्य रूप से प्रयोग करना है। तत्पश्चात, वह तीव्रता, जिसके साथ वह सीखेगा वह नियमित अध्ययन को करने में हुई किसी भी देरी की भरपाई कर देगा, और यह पाया जाएगा कि, जहाँ अब वह कुछ चीजें बुरी तरह से सीखता है, उसके बाद वह बहुत-सी चीजों को बहुत अच्छी तरह से सीखेगा।

V

इन्द्रियों का प्रशिक्षण

(The Training of the Senses)

छः इन्द्रियाँ हैं जो ज्ञान, दृष्टि, श्रवण, गन्ध, स्पर्श तथा स्वाद के लिए कार्य करती हैं, और ये सभी, केवल अन्तिम को छोड़कर, बाहर की ओर देखती हैं और बाहर से भौतिक तंत्रिकाओं एवं उनके बाहय अंगों, आँख, कान, नाक, त्वचा, तालु के द्‌वारा विचार के लिए सामग्री एकत्र करती हैं। विचारों के मंत्री के रूप में इन्द्रियों की उत्कृष्टता शिक्षकों के लिए ध्यान देने वाली सबसे पहली बातों में से एक होनी चाहिए। इन्द्रियों से जिन दो चीजों की आवश्यकता होती है, वे हैं – सटीकता और संवेदनशीलता। हमें सबसे पहले यह समझना चाहिए कि इन्द्रियों की सटीकता और संवेदनशीलता की बाधाएँ क्या हैं, इससे ही हम उन्हें दूर करने के लिए सर्वश्रेष्ठ कदम उठा सकते हैं। जो लोग उत्कृष्टता लाना चाहते हैं उनके द्‌वारा अपूर्णता के कारण को अवश्य ही समझा जाना चाहिए।

ये इन्द्रियाँ अपनी सटीकता और संवेदनशीलता के लिए तंत्रिकाओं की निर्बाध गतिविधि पर निर्भर करती हैं जो उनकी सूचना और उस मन की निष्क्रिय स्वीकार्यता के वाहक हैं जो ग्रहण करने वाला (recipient) है। अपने-आप में अंग परिपूर्णता में अपना कार्य करते हैं। आँखें सही आकार देती हैं, कान सही आवाज, तालु सही स्वाद, त्वचा सही स्पर्श, नाक सही गन्ध। यह आसानी से समझा जा सकता है यदि हम आँख के कार्य का अध्ययन एक बहुत महत्त्वपूर्ण उदाहरण की तरह करें। एक सही चित्र का पुन:उत्पादन अपने-आप ही रेटिना पर हो जाता है, यदि इसकी प्रशंसा करने में कोई चूक होती है तो यह उस अंग की गलती नहीं है, बल्कि किसी और की है।

गलती तंत्रिकाओं के प्रवाह में हो सकती है। तंत्रिकाएँ कुछ और नहीं बल्कि माध्यम हैं, उनमें अंगों द्‌वारा प्रदान की गई सूचनाओं में बदलाव करने की स्वयं की कोई शक्ति नहीं होती। लेकिन एक माध्यम को बाधित किया जा सकता है और बाधा सूचना की पूर्णता अथवा सटीकता में दखल दे सकती है, न कि तब जबकि यह अंग तक पहुँचती है जहाँ यह अनिवार्य रूप से और अपने-आप से पूर्ण होती है, बल्कि जब यह मन तक पहुँचती है। केवल अपवाद उस मामले में हो सकता है जहाँ एक यंत्र के रूप में अंग में कोई शारीरिक खराबी हो। वह शिक्षाविद् / शिक्षक का मामला नहीं है, बल्कि चिकित्सक का है।

यदि बाधा इस प्रकार की है जो सूचना को मन तक पहुँचने से पूरी तरह से रोक देती है, परिणाम इन्द्रियों की अपर्याप्त संवेदनशीलता होता है। दृष्टि, श्रवण, गन्ध, स्पर्श, स्वाद, विभिन्न प्रकार की चेतनाशून्यता का उपचार किया जा सकता है जब यह खुद अंग पर किसी शारीरिक चोट या खराबी के प्रभाव के कारण न हो। तंत्रिका तंत्र के शुद्धिकरण द्वारा रुकावटों को दूर किया जा सकता है और संवेदनशीलता को उपचारित किया जा सकता है। उपचार सरल-सा है जो अलग कारणों तथा वस्तुओं के कारण अब यूरोप में अधिकाधिक लोकप्रिय होता जा रहा है, वह है साँसों का सामंजन। यह प्रक्रिया अनिवार्य रूप से वाहिकाओं की सम्पूर्ण एवं निर्बाध गतिविधि को पुनर्स्थापित करती है और, यदि यह अच्छी तरह से एवं विस्तारपूर्वक किया जाता है तो यह इन्द्रियों की उच्चतर गतिविधि की ओर ले जाता है। इस प्रक्रिया को योगिक अनुशासन (Yogic discipline) में नाड़ी शुद्धि अथवा तंत्रिका-शुद्धिकरण कहते हैं।

वाहिका में अवरोध इस प्रकार का हो सकता है कि यह पूरी तरह से रोकने के लिए न हो हालाँकि वह कितने भी छोटे अंश में हो, बल्कि यह सूचना को नष्ट करने के लिए हो। इसका एक परिचित उदाहरण भय का प्रभाव अथवा इन्द्रिय कार्य पर खतरे का संकेत है। एक बिदका हुआ (startled) घोड़ा सड़क पर पड़ी बोरी को एक खतरनाक जीवित चीज मान लेता है, एक डरा हुआ आदमी रस्सी को साँप मान लेता है, एक हिलते हुए पर्दे में एक भूतिया आकृति देख लेता है। तंत्रिका तंत्र में क्रियाओं के कारण होने वाली सभी विकृतियों का पता तंत्रिका वाहिकाओं में किसी भी प्रकार की भावनात्मक गड़बड़ी से लगाया जा सकता है। उनके लिए एकमात्र उपचार शान्त होने की आदत है, तंत्रिकाओं की आदतन स्थिरता। इसे नाड़ी शुद्धि अथवा तंत्रिका-शुद्धिकरण के द्वारा भी प्राप्त किया जा सकता है, जो प्रणाली को शान्त करता है, सभी आन्तरिक प्रक्रियाओं को एक सप्रयास शान्ति प्रदान करता है तथा मन के शुद्धिकरण को तैयार करता है।

यदि तंत्रिका वाहिकाएँ शान्त एवं स्पष्ट हैं, सूचनाओं की एकमात्र सम्भावित गड़बड़ी केवल मन से अथवा मन के द्वारा है। अब मनस अथवा छठी इन्द्रिय तंत्रिकाओं की तरह अपने-आप में एक माध्यम है, बुद्धि (brain-force) के साथ संवाद करने के लिए एक माध्यम। गड़बड़ी ऊपर से या नीचे से भी हो सकती है। बाहर से जानकारी सबसे पहले अन्तिम अंग पर चित्रित होती है, फिर चित्त अथवा निष्क्रिय स्मृति में तंत्रिका तंत्र के दूसरे छोर पर पुन:उत्पादित की जाती है। दृष्टि के सभी चित्र, ध्वनियाँ, गन्ध, स्पर्श और स्वाद वहाँ जमा किए जाते हैं तथा मनस द्वारा उसकी सूचना बुद्धि को दी जाती है। मनस एक इन्द्रिय और एक माध्यम दोनों ही है। एक ज्ञानेन्द्रिय के रूप में यह स्वचालित रूप से अन्य की भाँति सटीक है, एक माध्यम के रूप में इसमें गड़बड़ी हो सकती है जो बाधा अथवा विकृति के रूप में हो सकती है।

एक ज्ञानेन्द्रिय के रूप में मन बाहर और भीतर से प्रत्यक्ष विचार छापों को प्राप्त करता है। ये छाप अपने-आप में सटीक रूप से सही हैं, परन्तु बुद्धि को अपने प्रतिवेदन में वे या तो बुद्धि तक बिलकुल नहीं पहुँचेंगे अथवा ऐसे विकृत रूप में पहुँचेंगे जो असत्य अथवा आंशिक रूप से असत्य छवि का निर्माण करेंगे। गड़बड़ी द्वारा उस छवि को प्रभावित किया जा सकता है जो आँख, कान, नाक, त्वचा अथवा तालु से प्राप्त सूचना पर ध्यान देती है, परन्तु यह यहाँ बहुत हल्के रूप में शक्तिशाली होती है। मन के प्रत्यक्ष छापों पर इसके प्रभाव में, यह बहुत शक्तिशाली है तथा त्रुटि का प्रमुख स्रोत है। मन मुख्य रूप से विचारों की प्रत्यक्ष छापों को लेता है, परन्तु स्वरूप, ध्वनि का भी, वास्तव में उन सभी चीजों का, जिनके लिए यह आमतौर पर ज्ञानेन्द्रियों पर निर्भर रहना पसन्द करता है। मन की इस संवेदनशीलता का सम्पूर्ण विकास हमारे योगिक अनुशासन में सूक्ष्मदृष्टि अथवा चित्रों की सूक्ष्म प्राप्ति कहलाती है। दूरानुभूति (telepathy), अतीन्द्रिय दृष्टि (clairvoyance), असामान्य श्रवणशक्ति (clairaudience), पूर्वाभास (presentiment), विचारों का पढ़ना, चरित्र पढ़ना और कई अन्य आधुनिक खोज, मस्तिष्क की अत्यन्त प्राचीन शक्तियाँ हैं जो अविकसित छोड़ दी गई हैं, और वे सभी मनस से सम्बन्धित हैं। छठी इन्द्रिय का विकास कभी भी मानव प्रशिक्षण का अंग नहीं बना है। भविष्य के युग में यह निःसन्देह मानव उपकरण के अनिवार्य प्राथमिक प्रशिक्षण में शामिल होगा। इस बीच कोई कारण नहीं है कि बुद्धि को एक सही प्रतिवेदन देने के लिए मन को प्रशिक्षित न किया जाए जिससे कि हमारे विचार पूर्ण रूप से सही तरीके प्रारम्भ हो सकें यदि पूर्ण छापों के साथ न भी हो सके।

सबसे पहला अवरोध, तंत्रिकीय भावनात्मक, को हम तंत्रिका तंत्र के शुद्धिकरण के द्वारा हटाने की कल्पना कर सकते हैं। दूसरा अवरोध स्वयं भावनाओं का ही है जो किसी छवि के आने पर उसे मोड़ देता है। प्रेम यह कर सकता है, घृणा यह कर सकती है, कोई भी भावना अथवा कामना अपनी शक्ति और प्रबलता के अनुरूप इसकी यात्रा के दौरान इसकी छवि बिगाड़ सकती है। इस कठिनाई को केवल भावनाओं के अनुशासन के द्वारा, नैतिक आदतों के शुद्धिकरण से दूर किया जा सकता है। यह नैतिक प्रशिक्षण का एक अंग है और इसके विचार को इस क्षण के लिए टाला जा सकता है। अगली कठिनाई है चित्त अथवा निष्क्रिय स्मृति में पहले बने अथवा अन्तर्निहित सम्बन्धों का हस्तक्षेप। हमारा चीजों को देखने का आदतन एक तरीका होता है और हमारी प्रकृति में एक रूढ़िवादी जड़ता हमारे हर नए अनुभव को आकार और अनुरूपता देने के लिए उकसाती है, जिसके हम आदी हैं। यह केवल अधिक विकसित मन हैं जो नए अनुभव की नवीनता के विरुद्ध बिना एक अचेतन पूर्वाग्रह पहली छवियाँ प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, यदि जो हो रहा है उसकी हमें एक सच्ची छवि मिलती है – और आदतन हम वैसी छवियों के सत्य या असत्य होने का निर्णय करते हैं – यदि वह उससे भिन्न है जिसकी अपेक्षा करने के

हम आदी हैं, पुराना सम्बन्ध इससे चित्त में मिलता है तथा एक बदला हुआ प्रतिवेदन बुद्धि को भेजता है जिसमें या तो नई छवि पुरानी द्वारा ढँक अथवा छुपा ली जाती है अथवा इससे घुल-मिल जाती है। विषय में आगे जाने के लिए हमें स्वयं को मनोविज्ञान के विवरण में बहुत गहरे शामिल होना होगा। यह विशिष्ट दृष्टान्त पर्याप्त होगा। चित्तशुद्धि अथवा चित्त में निर्मित होने वाली मानसिक एवं नैतिक आदतों के शुद्धिकरण के बिना इस बाधा से छुटकारा पाना असम्भव है। यह योग की एक बुनियादी व्यवस्था है और हमारी प्राचीन व्यवस्था में विभिन्न माध्यमों से प्रभावित हुई थी, परन्तु आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में यह अनुपयुक्त मानी जाएगी।

इसलिए, यह स्पष्ट है, कि हम जब तक अपनी पुरानी भारतीय व्यवस्था को उसके कुछ पुराने सिद्धान्तों में वापस नहीं करते हैं, तब तक खलल के इस स्रोत को बने रहने देने के लिए हमें सन्तुष्ट होना चाहिए। शिक्षा की एक वास्तविक राष्ट्रीय प्रणाली इस महत्त्वपूर्ण मामले में स्वयं को यूरोपीय विचारों से नियंत्रित होने की अनुमति नहीं प्रदान करेगी। और यहाँ एक इतनी सरल व महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है कि इसे आसानी से हमारी व्यवस्था का अंग बनाया जा सकता है।

यह हमारी इच्छा और नियंत्रण से स्वतंत्र निष्क्रिय स्मृति से अपनी स्वयं की गति से उठने वाली विचारों की बेचैन बाढ़ की निष्क्रियता लाने में शामिल है। यह निष्क्रियता पुराने सम्बन्धों और झूठी छवियों की घेराबन्दी से बौद्धिकता को मुक्त करती है। यह निष्क्रिय स्मृति के भण्डारघर से सिर्फ वह चुनने की शक्ति प्रदान करता है जिसकी आवश्यकता है, स्वचालित रूप से सही धारणाएँ प्राप्त करने की आदत लाता है और चित्त को यह बताने में बुद्धि को सक्षम बनाता है किन संस्कार या सम्बन्धों को बनाया या नकारा जाना चाहिए। यह बुद्धि का वास्तविक कार्यालय है, – भेदभाव करना, चुनना, चयन करना, व्यवस्थित करना। लेकिन जब तक कि चित्तशुद्धि नहीं है, इस कार्य को सटीक रूप से करने के बजाय, यह स्वयं में ही अपूर्ण और भ्रष्ट बना रहता है और झूठे निर्णय, असत्य कल्पना, झूठी स्मृति, झूठे अवलोकन, झूठी तुलना, फर्क तथा समानता बताने, झूठे निगमन, आगमन और निष्कर्ष द्वारा मन के मार्ग में भ्रम को बढ़ाता है। बुद्धि की मुक्ति, शुद्धि और सटीक कार्य के लिए चित्त की शुद्धि अनिवार्य है।

VI
अभ्यास द्वारा इन्द्रिय-सुधार
(Sense-Improvement by Practice)

ज्ञान को एकत्र करने वाले के रूप में इन्द्रियों के निष्प्रभावी होने का अन्य कारण, उनका अपर्याप्त उपयोग किया जाना है। हम पर्याप्त तरीके अथवा पर्याप्त ध्यान व निकटता के साथ अवलोकन नहीं करते हैं और एक दृश्य, ध्वनि, गन्ध, यहाँ तक कि स्पर्श या स्वाद भी प्रवेश के लिए इनके द्वार पर व्यर्थ ही दस्तक देते हैं। निःसन्देह, ग्रहण करने वाले यंत्रों की यह तामसिक निष्क्रियता (tamasic inertia) बुद्धि की लापरवाही के कारण है, और इसलिए इसकी मीमांसा उचित तरीके से तभी होती दिखती है जब मेधा के कार्यों का प्रशिक्षण किया जाए, लेकिन इसपर यहाँ गौर करने के लिए यह अधिक सुविधाजनक, परन्तु मनोवैज्ञानिक रूप से कम उचित है। छात्र को अपने आसपास के दृश्यों, ध्वनियों, आदि पर गौर करने का, उनमें फर्क करने का, उनकी प्रकृति, गुणों व स्रोतों को पहचानने और उन्हें अपने चित्त में बिठाने का आदी बनाया जाना चाहिए जिससे कि वे हमेशा स्मृति के आधार पर प्रतिक्रिया देने के लिए तैयार हों।

यह एक तथ्य है जिसे सूक्ष्म प्रयोगों द्वारा स्थापित किया गया है कि अवलोकन का संकाय (faculty) मनुष्य में बहुत अपूर्ण रूप से विकसित है, यह मात्र इन्द्रियों के उपयोग और स्मृति की देखभाल की इच्छा करने तक है। बारह लोगों को स्मृति से वह सब दर्ज करने का कार्य दें जो उन सबने दो घण्टे पहले देखा था, और उन सभी के द्वारा दिया गया ब्योरा एक दूसरे से और वास्तविक घटना से भिन्न होगा। इस अपूर्णता से छुटकारा पाने के लिए त्रुटि को दूर करने की दिशा में दूर तक जाएँगे। यह इन्द्रियों को अपना कार्य सटीकता से करने के लिए प्रशिक्षित करने के द्वारा किया जा सकता है, जो वे पर्याप्त तत्परता से करेंगे यदि वे यह जानेंगे कि बुद्धि को उनसे यह अपेक्षित है, और तथ्यों को उनकी सही स्थानों और क्रम में स्मृति में रखने के लिए पर्याप्त ध्यान देंगे।

ध्यान देना ज्ञान में एक कारक है, जिसके महत्त्व को सदैव स्वीकार किया गया है। ध्यान देना, सही स्मृति और सटीकता की पहली शर्त है। यह देखने के लिए कि वह क्या कर रहा है, छात्र के लिए वांछित अनुशासन का पहला तत्त्व है, और, जैसा कि मैंने सुझाया है, यह आसानी से

सुरक्षित किया जा सकता है यदि उस वस्तु को रोचक बनाया जाए जो ध्यान के केन्द्र में है। एक वस्तु के प्रति दिया जाने वाला यह ध्यान एकाग्रता (concentration) कहलाता है। यद्यपि, एक सत्य, कि एक साथ कई वस्तुओं पर एकाग्रता अकसर अपरिहार्य होती है, कभी-कभी अनदेखा कर दिया जाता है। जब लोग एकाग्रता की बात करते हैं, उनका अर्थ निश्चित रूप से मन को एक समय में एक वस्तु में लगाने से होता है; परन्तु यह काफी सम्भव है कि द्वि-पक्षीय एकाग्रता, त्रि-पक्षीय एकाग्रता और बहु-पक्षीय एकाग्रता की शक्ति विकसित कर ली जाए। जब एक प्रदत्त घटना हो रही है, यह कई क्रमिक घटनाओं अथवा क्रमिक परिस्थितियों के समुच्चय से, एक दृश्य से, एक ध्वनि, एक स्पर्श अथवा एक ही क्षण में अथवा समय के एक ही बहुत छोटे-से अन्तराल में हो रहे कई दृश्यों, ध्वनियों, स्पर्शों से निर्मित हो सकता है। मस्तिष्क की यह प्रवृत्ति होती है कि वह एक जगह बँधता है और अन्य को अस्पष्ट रूप से चिह्नित करता है, कई बिलकुल नहीं अथवा, यदि इसे सभी पर ध्यान देने के लिए बाध्य किया गया, सम्भव है कि ध्यान बँट जाए तथा किसी को भी सटीकता से चिह्नित न किया जा सके। तथापि इसका उपचार किया जा सकता है और ध्यान को परिस्थितियों के समुच्चय पर इस प्रकार बराबर-बराबर बाँटा जा सकता है कि यह अवलोकन कर हर एक को सटीक तरीके से याद रख सके। यह केवल अभ्यास अथवा सधे हुए स्वाभाविक अभ्यास का मामला है।

यह भी बहुत वांछनीय है कि अपनी गतिविधि की बहुसंख्य वस्तुओं के साथ व्यवहार करते समय हाथ आँख की मदद के लिए सक्षम हो ताकि सटीकता सुनिश्चित की जा सके। यह एक ऐसा उपयोग है जो स्पष्ट और अनिवार्य रूप से वांछित है, कि इसपर विस्तारपूर्वक ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। देखी गई वस्तु का अनुकरण करने का हाथों द्वारा अभ्यास, वस्तुओं पर इन्द्रिय के ध्यान दिए जाने में मन की कमियों और अशुद्धियों दोनों का पता लगाने के लिए और उस देखे गए को सटीकता से दर्ज करने के लिए उपयोगी है। हाथों के द्वारा नकल किया जाना अवलोकन की सटीकता सुनिश्चित करता है। यह रेखांकन के सर्वप्रथम उपयोगों में से एक है तथा यह अपने-आप में इसके लिए पर्याप्त है कि यह इस विषय के शिक्षण को अंगों के प्रशिक्षण का एक अनिवार्य अंग बना सके।

VII

मानसिक संकायों का प्रशिक्षण

(The Training of the Mental Faculties)

विकसित किए जाने वाले मन के सबसे पहले गुणों में वे हैं जिन्हें अवलोकन के दायरे में समूहीकृत किया जा सकता है। हम कुछ चीजों पर ध्यान देते हैं, कुछ अन्य को अनदेखा करते हैं। यदि हम ध्यान भी देते हैं तब भी हम बहुत थोड़ा अवलोकन करते हैं। किसी वस्तु की एक सामान्य अवधारणा वह होती है जिसे हम अधूरे तरीके से ध्यान देते हुए मात्र नजर भर देखकर साथ ले जाते हैं। करीबी रूप से ध्यान देने से इसके वातावरण से पृथक इसका स्थान, स्वरूप, प्रकृति निर्धारित होते हैं। अवलोकन के संकाय की पूर्ण एकाग्रता हमें वह सारा ज्ञान प्रदान करती है जो हमारी तीन प्रमुख इन्द्रियों द्वारा किसी भी वस्तु के विषय में एकत्र किया जा सकता है, अथवा यदि हम छूते या चखते हैं, हम वह सबकुछ एकत्र कर सकते हैं जो हमें पाँचों इन्द्रियों द्वारा इसकी प्रकृति एवं गुणों के बारे में बताया जा सकता है। कवि, चित्रकार, योगी जो छठी इन्द्रिय का उपयोग करते हैं, वे भी वह सबकुछ कहीं अधिक एकत्र कर सकते हैं जो किसी सामान्य अवलोकनकर्ता से छिपा हुआ है। अनुसन्धान द्वारा वैज्ञानिक वैसे अन्य तथ्यों को स्थापित करते हैं जो एक सूक्ष्म अवलोकन के लिए खुले होते हैं। ये अवलोकन के संकाय के घटक हैं, और स्वाभाविक रूप से ध्यान-केन्द्रण इसका आधार है, जो केवल निकट अथवा निकट व सूक्ष्म हो सकता है। यदि हमें किसी चीज पर ध्यान-केन्द्रण की आदत है और सात्विक ग्रहणशीलता (sattwic receptivity) की आदत है, तो हम किसी वस्तु पर नजर मात्र डालकर कहीं अधिक जान सकते हैं। वह पहली चीज जो शिक्षक को करनी चाहिए, वह है कि वह छात्र को ध्यान-केन्द्रण का अभ्यास कराएँ।

हम एक फूल का दृष्टान्त ले सकते हैं। इसे यूँ ही देखने और ऐसे ही गन्ध, रूप तथा रंग की कोई सामान्य-सी छवि प्राप्त करने के बजाय, उसे फूल को जानने के लिए प्रेरित करना चाहिए – उसके मन को रंग की सटीकता, विशिष्ट चमक, गन्ध की बिलकुल सही प्रबलता, घुमावों की सुन्दरता और स्वरूप की रूपरेखा को तय करना चाहिए। उसका स्पर्श करना ही उसे सतह की बनावट तथा उसकी विशिष्टताओं के बारे में आश्वस्त कर दे। अगला, फूल को खण्डित कर पूरे ध्यान से अवलोकन करते हुए उसकी संरचना की जाँच की जानी चाहिए। यह सबकुछ एक प्रदत्त कार्य के रूप में नहीं कराया जाना चाहिए, अपितु छात्र के लिए उपयुक्त कुशलतापूर्वक व्यवस्थित

किए गए प्रश्नों के माध्यम से अभिरुचि की वस्तु के रूप में कराया जाना चाहिए, जो कि छात्र को एक के बाद दूसरी वस्तु के अवलोकन की ओर ले जाएगा जब तक कि वह लगभग अचेतन रूप से इसमें पूर्ण महारत न प्राप्त कर ले।

स्मृति और निर्णय वे अगले गुण हैं जिनकी बात की जानी चाहिए, तथा उन्हें समान अचेतन तरीके से प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। छात्र को याद कराए जाने के लिए पाठ का बार-बार दोहराव नहीं कराया जाना चाहिए। यह स्मृति को प्रशिक्षित करने का एक यांत्रिक, बोझिल और मूर्खतापूर्ण तरीका है। एक समान परन्तु भिन्न फूल उसके हाथों में रखा जाना चाहिए तथा इसे पूर्ववत सावधानी से, परन्तु समानताओं और भिन्नताओं को पहचानने के स्वीकृत उद्देश्य के साथ देखने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। यह अभ्यास नियमित रूप से किए जाने से स्मृति प्राकृतिक रूप से प्रशिक्षित होगी। न केवल यह, बल्कि मन के तुलना करने वाले तथा अन्तर बताने वाले केन्द्र भी विकसित होंगे। छात्र वस्तुओं की समानताओं और विभिन्नताओं को एक आदत की तरह अवलोकन करना प्रारम्भ कर देंगे। शिक्षक को इस संकाय और आदत के सम्पूर्ण विकास को प्रोत्साहित करने के लिए भरपूर ध्यान रखना चाहिए। उसी समय में, एक कुशल अनुगमन और विकसित हो रहे युवा मस्तिष्क का मार्गदर्शन करने से, जाति (genus) तथा प्रजाति (species) का प्रादुर्भाव मन में होना प्रारम्भ हो जाएगा। इससे वैज्ञानिक आदतों, वैज्ञानिक रवैए और वैज्ञानिक ज्ञान के मूलभूत तथ्यों को बहुत थोड़े-से समय में छात्र के मन का स्थाई उपकरण बनाया जा सकता है। फूलों, पत्तियों, पौधों, पेड़ों का अवलोकन एवं तुलना, बिना मस्तिष्क पर नामों व सूचनाओं के शुष्क समूह अर्जन का भार डाले, जो कि रटने की शुरुआत है और प्राकृतिक रूप से तरोताजा मानव मस्तिष्क, जो अब तक अप्राकृतिक तरीकों का आदी नहीं हुआ है, उसके लिए अरुचिकर है, वनस्पतिशास्त्र के ज्ञान की बुनियाद रखेंगे। उसी प्रकार से तारों के अवलोकन से खगोलशास्त्र, पृथ्वी, पत्थरों आदि के अवलोकन से भूविज्ञान, कीटों और जीव-जन्तुओं के अवलोकन से कीटविज्ञान (entomology) व जीवविज्ञान की बुनियाद पड़ सकती है। कुछ बाद में बिना किसी औपचारिक शिक्षण के अथवा मन में सूत्रों तथा किताबी ज्ञान का ढेर लगाए, प्रयोगों के रुचिकर अवलोकन के द्वारा रसायनशास्त्र का प्रारम्भ किया जा सकता है। ऐसा कोई भी वैज्ञानिक विषय नहीं है जिसकी सम्पूर्ण और प्राकृतिक महारत प्रारम्भिक बाल्यावस्था में वस्तुओं के विभिन्न वर्गों के अवलोकन, तुलना, स्मरण और निर्णय लेने के संकायों के इस प्रशिक्षण द्वारा तैयार नहीं की जा सकती है। यह सरलता से और छात्र के मन की सर्वोच्च तथा अवशोषक अभिरुचि के साथ किया जा सकता है। एक बार जब अभिरुचि निर्मित हो जाती है, बालक द्वारा अपने खाली समय में पूर्ण उत्साह के साथ इसके अनुसरण का विश्वास किया जा सकता है। इससे बाद की उम्र में उसे कक्षा में सबकुछ पढ़ाए जाने की बाध्यता को रोका जा सकता है।

निर्णय प्राकृतिक रूप से अन्य संकायों के साथ तैयार किया जाएगा। प्रत्येक चरण पर बालक को यह तय करना होगा कि सही विचार, माप, रंग, ध्वनि, गन्ध, आदि की सराहना क्या है, और क्या गलत है। अकसर लिए गए निर्णयों तथा विभेदों को अत्यन्त परिष्कृत और नाज़ुक होना होगा। पहले-पहल कई गलतियाँ होंगी, लेकिन अधिगमकर्ता को बिना इसके परिणामों के प्रति जुड़ाव रखे अपने निर्णय पर विश्वास करना सिखाना होगा। फिर यह पाया जाएगा कि जल्द ही निर्णय उन बातों के बारे में प्रतिक्रिया करेंगे जिनके लिए निर्णय लिया गया है, ये अपने-आप को सभी गलतियों से मुक्त करेगा तथा सही व सूक्ष्मता से फैसला करना प्रारम्भ कर देगा। बालक को अपने निर्णयों की तुलना दूसरों के निर्णयों से करने की आदत लगाना सर्वोत्तम तरीका है। जब वह गलत है, उसे पहले यह बताया जाना चाहिए कि वह किस हद तक सही था और वह क्यों गलत है, उसके बाद उसे प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वह इन बातों पर खुद ध्यान दे सके। हर बार जब वह सही हो, उसे प्रमुखता से और प्रोत्साहनपूर्वक इसका ध्यान दिलाया जाना चाहिए जिससे कि उसमें आत्मविश्वास आए।

तुलना करने और अन्तर दिखाने में शामिल होने के दौरान अन्य केन्द्र का विकास सुनिश्चित है, वह है समानता का केन्द्र (centre of analogy)। छात्र अनिवार्य रूप से समानताएँ तय कर पाएगा और एक प्रकार से दूसरे प्रकार तक के लिए तर्क कर पाएगा। उसे इस संकाय की सीमाओं तथा त्रुटियों पर गौर करने के दौरान इसके उपयोग के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। इस प्रकार से वह सही समानता की आदत विकसित करने के लिए प्रशिक्षित होगा, जो कि ज्ञानार्जन में एक अपरिहार्य सहायता है।

प्रत्यक्ष तर्क के संकाय के अतिरिक्त, एक संकाय जिसे हमने विलोपित कर दिया है, वह है कल्पना। यह सबसे महत्त्वपूर्ण और अनिवार्य उपकरण है। इसे तीन कार्यों में विभक्त किया जा सकता है, मानसिक चित्रों का निर्माण, विचारों, चित्रों तथा अनुकरणों के सृजन की शक्ति अथवा विद्यमान विचारों और चित्रों के नए मेल, वस्तुओं, सौन्दर्य, मोहकता, महानता, छिपी हुई ध्वन्यात्मकता (hidden suggestiveness), भावना तथा आध्यात्मिक जीवन, जो कि पूरे संसार में व्याप्त है उसमें आत्मा की सराहना। यह हर प्रकार से उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि उन संकायों का प्रशिक्षण जो बाहरी वस्तुओं का अवलोकन एवं उनकी तुलना करते हैं। परन्तु वह एक अलग एवं परिपूर्ण उपचार की माँग करता है।

मानसिक संकायों को सर्वप्रथम वस्तुओं पर उपयोग में लाया जाना चाहिए, उसके बाद शब्दों एवं विचारों पर। भाषा के साथ हमारा लेन-देन बहुत असावधानी के साथ किया हुआ है और शब्दों की सूक्ष्म समझ की अनुपस्थिति बौद्धिकता का एक कामचलाऊ प्रबन्धन करती है और इसकी

कार्यविधि की उत्कृष्टता एवं सत्य को सीमित करती है। मस्तिष्क को सबसे पहले शब्द को, इसके स्वरूप, ध्वनि, आशय को अच्छी तरह से अवलोकित करने के लिए अभ्यस्त होना चाहिए; तब अन्य मिलते जुलते स्वरूपों के साथ समानता अथवा विभिन्नता के बिन्दुओं से इसके स्वरूप की तुलना करने के लिए, जिससे कि व्याकरण सम्बन्धी समझ की नींव का निर्माण हो; उसके बाद समान शब्दों की समझ की बारीक भिन्नताओं और विभिन्न वाक्यों के संगठन एवं लय के बीच अन्तर करने के लिए जिससे कि साक्षरता एवं वाक्य रचना के नियमों के अनुसार संकायों की नींव का निर्माण हो। यह सबकुछ जिज्ञासा एवं अभिरुचि को आकर्षित करते हुए, स्थापित शिक्षण और नियमों को याद रखे जाने को अनदेखा करते हुए, अनौपचारिक रूप से होना चाहिए। वास्तविक ज्ञान वस्तुओं, अर्थों को अपना आधार बनाता है, और केवल वस्तु पर निपुणता प्राप्त कर लेने के बाद ही इसकी सूचना को औपचारिक रूप देने के लिए आगे बढ़ता है।

VIII

तार्किक संकाय का प्रशिक्षण

(The Training of the Logical Faculty)

तार्किक विचारों के प्रशिक्षण को अनिवार्य रूप से उन संकायों के प्रशिक्षण का अनुसरण करना चाहिए जो ऐसी सामग्री एकत्र करते हैं जिनके आधार पर तार्किक विचार को अवश्य कार्य करना चाहिए। केवल यही नहीं, बल्कि मन में शब्दों के साथ कार्य करने वाले संकाय का कुछ विकास अवश्य होना चाहिए इससे पहले कि यह विचारों के साथ सफलतापूर्वक तरीके से कार्य कर सके। प्रश्न यह है कि, एक बार यह प्राथमिक कार्य सम्पन्न हो जाता है तब वह कौन-सा तरीका है जिससे कि बालक को परिसर से सही तरीके से विचार करना सिखाया जाता है, क्योंकि परिसर के बिना तार्किक विचार आगे नहीं बढ़ सकता है। यह या तो तथ्यों से किसी निर्णय पर पहुँचने के लिए निष्कर्ष निकालता है, अथवा पूर्व के निष्कर्षों से एक नए निष्कर्ष पर, अथवा एक तथ्य से दूसरे तथ्य पर पहुँचता है। यह या तो प्रेरित करता है, परिणाम निकालता है अथवा केवल निष्कर्ष निकालता है। मैं दिन प्रतिदिन सूर्य को उगते देखता हूँ, मैं यह निष्कर्ष निकालता हूँ अथवा यह मानने के लिए प्रेरित होता हूँ कि यह नित्य ही अँधेरे के बदलने वाले अन्तराल के पश्चात नियमबद्ध रूप से उदित होता है। मैं पहले ही यह अभिनिश्चित कर चुका हूँ कि जहाँ कहीं भी धुआँ होता है, वहाँ आग होती है। मैंने इस सामान्य नियम को तथ्यों के अवलोकन के द्वारा उभारा है। मैं यह परिणाम निकालता हूँ कि कहीं धुआँ उठने के किसी विशेष मामले में इसके पीछे आग का होना है। यह निष्कर्ष कि इसे अवश्य ही मनुष्य ने जलाया होगा, मैं उन विशेष परिस्थितियों में किसी अन्य कारण की असम्भावना के आधार पर निकालता हूँ। मैं इस परिणाम तक केवल इसलिए नहीं पहुँच सकता कि आग हमेशा मनुष्य के द्वारा नहीं लगाई जाती है; यह ज्वालामुखी के कारण हो सकती है अथवा बिजली गिरने या आसपास किसी प्रकार के घर्षण से उठी चिंगारी से हो सकती है।

सही तार्किकता के लिए तीन तत्त्वों का होना अनिवार्य है, सबसे पहला, उन तथ्यों अथवा निष्कर्षों की सत्यता का होना जिनसे मैं प्रारम्भ करता हूँ, दूसरा, उन आँकड़ों की पूर्णता के साथ-साथ सटीकता जिनसे मैं प्रारम्भ करता हूँ, तीसरा, अन्य सम्भव अथवा असम्भव निष्कर्षों को निकाल देना जो उन्हीं तथ्यों से प्राप्त हो सकते हैं। तार्किक विचार की अशुद्धि आंशिक रूप से टाली जा सकने योग्य लापरवाही और इन परिस्थितियों को सुरक्षित किए जाने में हुई ढिलाई के

कारण होती है, आंशिक रूप से सभी तथ्यों के सही प्राप्त करने में होने वाली कठिनाई के कारण, तब भी अधिकांशतः यह सभी तथ्यों को पूर्ण रूप में प्राप्त कर पाने की कठिनाई के कारण होता है और सबसे अधिक, इस बात की अत्यधिक समस्या के कारण कि सही निष्कर्ष को छोड़कर अन्य सभी सम्भावित निष्कर्षों को बाहर कर दिया जाए। एक अनिवार्य सिद्धान्त के रूप में गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त की सार्वभौमिकता से बढ़कर किसी अन्य तथ्य का अधिक सटीक रूप से स्थापित होना अपेक्षित नहीं है, तथापि एक भी नए तथ्य की इससे भिन्नता इस तथाकथित सार्वभौमिकता को गड़बड़ कर देगी। और ऐसे तथ्य अस्तित्व में हैं। तथापि, देखभाल तथा कुशाग्रता से अशुद्धि को इसके निम्नतम तक कम किया जा सकता है।

सामान्य अभ्यास में तार्किकता के विज्ञान को सिखाकर तार्किक विचार का प्रशिक्षण दिया जाता है। यह प्रचलित गलती का एक ऐसा अवसर है जिसके द्वारा किसी वस्तु के बारे में किताबी ज्ञान को अध्ययन का विषय बना दिया जाता है बजाय इसके कि सीधे उस वस्तु का अध्ययन किया जाए। तार्किकता एवं इसकी गलतियों के अनुभव को मस्तिष्क को दिया जाना चाहिए और इस बात का अवलोकन करना सिखाना चाहिए कि ये स्वयं के लिए कैसे कार्य करती हैं; इसे उदाहरण से सिद्धान्त की ओर तथा सिद्धान्तों के तालमेल के संचयन से विषय के औपचारिक विज्ञान की ओर बढ़ना चाहिए, न कि औपचारिक विज्ञान से सिद्धान्त और सिद्धान्त से उदाहरण की ओर।

पहला चरण है युवा मस्तिष्क को तथ्यों से निष्कर्ष निकालने में रुचि लेने वाला, कारण और प्रभाव की खोज करने वाला बनाना। इसे तब इसकी सफलताओं और असफलताओं पर तथा सफलता एवं असफलता के कारण पर ध्यान देने की ओर अग्रसर करना चाहिए; तथ्य का अनौचित्य जहाँ से शुरू हुआ, अपर्याप्त तथ्यों से निष्कर्ष निकालने की जल्दबाजी, ऐसे परिणाम को स्वीकारने में लापरवाही जो कि असम्भव है, आँकड़ों द्वारा मामूली रूप से समर्थित अथवा संशय की सम्भावनाओं वाला, निष्क्रियता या पूर्वाग्रह जो अन्य सम्भावित व्याख्याओं अथवा निष्कर्षों पर विचार नहीं करना चाहते। इस प्रकार से मस्तिष्क को उस हद तक सही तरीके से तर्क करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है जिस हद तक मानव दोषक्षमता (human logic), गलती की सम्भावनाओं को न्यूनतम करते हुए तर्क की अनुमति देगी। औपचारिक तर्क के अध्ययन को बाद के समय के लिए विलम्बित कर दिया जाना चाहिए जब इसपर बहुत अल्प समय में आसानी से अधिकार प्राप्त किया जा सकता हो, क्योंकि तब यह उस कला को व्यवस्थित किया जाना मात्र होगा जो छात्रों की सटीक रूप से ज्ञात होगी।

●●